खेती-बाड़ी

उत्तम खेती मध्यम बान ।
हीन चाकरी भीख निदान ॥

प्यारे कृषक, जागीरदार और विद्याधिकारियो! आप सब कहते हैं और हमारा यह निज का अनुभव है कि जाट, गूजर आदि कृषि-प्रधान जातियों के लड़के स्कूलों में बहुत कम आते हैं। उनसे कहो तो यही जवाब मिलता है, कि हमें तो ऐसी विद्या पढ़ाइये, जिससे हमारे बैल-बधिया, गाय-भैंस की उन्नति हो। वर्षों की पड़ी हुई पड़त भूमि नव-कृषि किशलय से हरी होकर लहलहाने लगे। खेतों में प्रचुर अन्नादि पैदा होकर हमारे घरों के कोठे गेहूँ, जौ, चना, मक्की, ज्वार, बाजरा, तिल, कपास, ज़ीरा आदि से भर जावें। बाड़ों और खिड़कों में कड़ब, भूसा, घास और खरपात की बागर और डूँगरी खड़ी होकर दही, दूध, घृत, छाछादि की नदियाँ बह जावें। अगर हम लोग पढ़ लिखकर बाबू-मुंशी बन गये, तो फिर आपके लिये अन्न, तरकारियाँ कौन पैदा करेगा? आपके कहने से हमने अपने लड़कों को घर के सब काम धन्धों से छुड़ाकर आठ-दस वर्ष बोर्डिङ्गहाउस

का खर्च उठाकर जैसे तैसे मिडिल पास कराया, क्योंकि हम समझते थे, कि इस तरह घर के दरिद्र दूर हो जावेंगे। पर पूत दस-बारह रुपये के मास्टर होकर घर के काम काज से भी गये। सच मानिये, इतना तो हमारे घर के हाली और मज़दूर पाजाते हैं और छाछ-रोटी-ब्याज में खा लेते हैं। बाबा! बाज़ आये आपकी इस तालीम से। हम भले और हमारी खेती भली। ज़मींदारों और जागीरदारों की भी सर्वत्र यही शिकायत सुनने में आती है, कि पढ़ा लिखाकर आप हमारे करसों को बिगाड़ते हैं। अगर सब पढ़ लिख के बाबू बन जावेंगे तो फिर गाँव की खेती कौन करेगा?

एक अंश में इन सब का यह कहना दुरुस्त भी है, क्योंकि कृषि सम्बन्धी सस्ती और आवश्यक सामग्री से परिपूर्ण कोई ऐसी पुस्तक न थी, जिस एक ही पुस्तक के पढ़ लेने से किसान का सब काम चल जावे। जो थोड़ी बहुत हैं भी वे स्कूलों में प्रचलित नहीं। यदि कोई प्रचलित भी हैं, तो वह रासायनिक और वैज्ञानिक बातों से भरी हुई हैं, जिन्हें किसान लोग कम समझने और अधिक खर्चीली होने के कारण व्यवहार में नहीं लाते। इन्हीं सब शिकायतों को ध्यान में रखकर और कतिपय जागीर- सत्परामर्श और कुछ विद्याधिकारियों के उत्साह-

दान से प्रेरित होकर "खेती-वाड़ी" नामक यह एक छोटीसी पुस्तक हम आपकी भेट कर रहे हैं। इसमें हम कहाँ तक कृतकार्य्य हुए हैं, यह भविष्य में आप सब सहृदय ही बतलावेंगे।

पुस्तक के छपने में ई, ऊ, ए, ऐ, ओ औ की मात्राए कहीं कहीं नहीं उठी हैं, उन्हें पाठकवृन्द सुधार कर पढ़ें।

कृष्णगढ़,
भादों सुदी, गणेशचौथ,
संवत् १९८४ वि०

निवेदकः—
रामदीन पाराशर,
विद्याधिकारी.

सूचीपत्र ।

खेती-बाड़ी

पहिला भाग

खेती

पहिली क्यारी

कारत और कारतकार

धरती व ज़मीन के जो खण्ड चारों तरफ़ से मेंड आदि डाल कर जोतने-बोने योग्य बना लिये जाते हैं, उन्हें खेत कहते हैं।

खेतों को जोत बोकर अनेक प्रकार के अन्न और फ़सलें आदि पैदा करने को खेती, कृषि, किसानी वा काश्त कहते हैं। प्राणीमात्र का जीवन कृषि पर निर्भर है, कृषि एक स्वतन्त्र उद्यम है। इसलिये हमारे देश की आबादी का अधिकांश भाग खेती-बाड़ी में लगा हुआ है। अब कुछ लोग बाबू बन कर कृषि-कर्म को बुरी नज़र से देखने लगे हैं, यह उनकी भूल है। देखा जाय तो किसान का दर्जा बहुत ऊंचा है, क्योंकि वह धरती में से अन्न पैदा करके हम सब को खाने को देता है, कहा भी है:—

"अन्न धन अनेक धन, सोना रूपा कितेक धन" ।

"उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान" ॥

काश्त कई प्रकार की होती है जैसे ज़मींदारी, जागीर, मिलक, माफ़ी, सीर, यापी और मौरूसी काश्त ।

जमींदारी—देश का राजा या बादशाह अपने सुभीते के लिये ज़मीन को उचित ख़िराज व लगान पर कुछ धनियों के हाथ बेच देता है । ऐसे गाँवों के मालिक ज़मींदार कहलाते

हैं। एक २ ज़मींदार के पास कई कई गाँव होते हैं, कभी २ ऐसा भी होता है कि एक ही गाँव में कई ज़मींदार होते हैं। ऐसी दशा में जो सरकार को लगान अदा करता है, वह नम्बरदार और दूसरे पट्टीदार कहलाते हैं।

जागीर—उत्तम सेवा व मुँहकटी के लिये राजा या बादशाह की तरफ़ से वीर पुरुषों को जो ज़मीन इनायत की जाती है, उसे जागीर कहते हैं, ऐसी जागीरें बिना कारण छीनी या बेची नहीं जाती हैं। क्रमागत उनके वंशजों का अधिकार चला आता है।

मिलक—सेवकों और मुत्सद्दियों को उनकी चाकरी के बदले जो ज़मीन इनायत की जाती है, उसे मिलक कहते हैं। मिलक पर किसी तरह का लगान नहीं लिया जाता।

सीर—ज़मींदार प्रायः खुद काश्त नहीं करते, थोड़ी बहुत ज़मीन जो खुद जोत बो लेते हैं, उसे सीर व ख़याला कहते हैं। ज़मींदारी बिक जाने पर भी ऐसी ज़मीन पर पीढ़ी दर-पीढ़ी ज़मींदार का हक़ बना रहता है। पीढ़ उनके वंशज वहाँ के भूमिया कहलाते हैं।

पारी—जब काश्तकार किसी ज़मीन का शुकराना तरीक़ माफ़िल रुपया अदा करके अपने नाम दवामी पट्टा करा लेता है, तब उसे उसकी पारी कहते हैं। पारी की ऐसी ज़मीनों पर बाद को न तो लगान बढ़ाया जा सकता है और न वह या उसके वंशज बेदख़ल किये जा सकते हैं। ज़रूरत पड़ने पर एवज़ पारी की ज़मीन को बेच भी सकता है।

मौरूसी काश्त—जो ज़मीन वर्षों तक एक ही काश्तकार के अधिकार में चली आती है, वह मौरूसी काश्त कहलाती है। ज़मींदार लोग बिना उचित कारण दिखलाये न तो ऐसी ज़मीनों पर कुछ लगान बढ़ा सकते हैं और न उसको खेत से बेदख़ल कर सकते हैं। बशर्ते कि समय पर लगान अदा करता रहे।

साधारण काश्तकार—यह लोग अपने घर की ज़मीन नहीं रखते, ज़मींदार व जागीरदार आदि से ज़रूरत के माफ़िक अपने नाम कुछ ज़मीन का पट्टा करा कर काश्त करते हैं। इनके भी शरह मुऐअन (सदाबन्दी) दख़ीलकार, ग़ैरदख़ील-कार शिकमी वग़ैरह कई भेद होते हैं।

शरह मुऐअन—जो दवामी बन्दोबस्त के समय से बराबर एक लगान देते आये हों। ऐसे काश्तकार न तो अपनी ज़मीन से बेदख़ल किये जा सकते हैं और न उनपर लगान बढ़ाया जा सकता है।

दख़ीलकार—वे लोग कहलाते हैं, जिन्हें १२ वर्ष एक ही ज़मीन जोतने के कारण उसपर दख़ीलकारी का हक़ प्राप्त हो गया है। यह भी बेदख़ल नहीं किये जा सकते।

ग़ैर दख़ीलकार—वह हैं जो उसी ज़मीन पर पहिले ज़मींदार की हैसियत से सीर करते रहे हैं।

खेतों की तक़सीम और बटवारा

हमारे गाँवों में खेतों की तक़सीम और बटवारा बहुत बुरी तरह पर प्रचलित है। अकसर देखने में आता है कि किसान का एक खेत इस मुहाल में है तो दूसरा खेत उससे मील आध मील दूर दूसरे मुहाल में, तीसरा-चौथा इससे भी कहीं अलग दूरी दराज़ पर। इसमें किसान को रखवाली आदि करने में बड़ी असुविधा होती है और वह मेंड़बंदी व बाड़बंदी नहीं कर सकते। इन बिखरे हुए खेतों के कारण मवेशी आदि का उजाड़ भी बहुत होता है। बल्कि इनको लेकर आपस में लट्ठबंदी और मारपीट तक की नौबत आ जाती है। अच्छा हो कि ज़मींदार और कृषकगण आपस में सहयोग करके अपने इन अलग २ बिखरे हुए खेतों को एक जगह कर लें, जिससे गाँव में सब को ही सुविधा हो जावे और हरएक किसान अपनी ज़मीन के चारों ओर काँटों की बाड़, घर आदि बनवा कर रक्षा का उपाय करले। इस तरीक़े पर किसान को अपने पशु आदि छोड़ने के लिये भी काफ़ी स्थान मिल जावेगा। हमारे राजपूताने में काँटे आदि से घिरे हुए बड़े २ "जाव" देखने में आते हैं। यही खेतों के समुदाय मिल कर चक और फ़ार्म कहलाते हैं।

शामलात भाराज़ी पट्टीदारों के गाँवों में कुछ शामलात आराज़ी और खोर आदि भी हुआ करती है। इसके यह मानी नहीं हैं कि उसको भी बाँटकर खेती की जावे। यह तो इस लिये हुआ करती है कि गाँव के आम फ़ायदे के लिये इस्तेमाल की जावे। कहीं तो गाँव के लड़कों, युवकों के खेलने के लिये मैदान बना दिये जावें। कहीं ज़माने की सबड़ी मुहैया

करने के लिये दरख़्तों का जङ्गल खड़ा कर दिया जावे, जिससे कि कंडों के थापने में गाँव की औरतों का क़ीमती समय नष्ट न हो और पशुओं का गोवर खाद के लिये बच जावे। क्योंकि गोवर ही हमारी खेती-बाड़ी की जान है। इसी प्रकार गाँव की इस शामलात ज़मीन का एक बड़ा हिस्सा पशुओं की चरागाह के लिये छोड़ कर एक हिस्सा खाद-घास के खत बनाने व गाँव का घास-फूस और काठ-कबाड़ डालने के लिये रख लिया जावे।

दूसरी क्यारी

खेती के साधन

खेती के लिये कृषक को कई साधनों की ज़रूरत होती है, अगर उनमें का एक भी साधन न हो तो उसे दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है और समय पर काम नहीं होता। कहनावत है:—

> बाँगर बोया बाजरा, खादर बोया धान।
> अपने पूता हीजरा, मोहि बतावे बाँझ॥

उपजाऊ खेत, अच्छे पशु, समयानुसार खेती के यन्त्र, उपयुक्त खाद, अच्छी जोत, उत्तम बीज, सिंचाई का सुपास और अच्छी सम्हाल का होना तो खेती के लिये आवश्यक ही है। काश्तकार से कुछ मुद्दत के लिये ज़मीन लेकर जोतें बोयें। इनमें

कितने तो इतने ग़रीब होते हैं कि उनके पास घर के बैल, बीज भी नहीं होते, बोहरे, ज़मींदार से सब काम चलाते हैं। अगर अकाल नहीं पड़ा और समय पर पानी बरसा तो बोहरे और ज़मींदार का क़र्ज़ा चुका कर अपनी साल भर की मज़दूरी मात्र पा जाते हैं। पीढ़ी दरपीढ़ी बोहरे और ज़मींदार के क़र्ज़ से उनका छुटकारा नहीं होता।

उपजाऊ खेत—खेत का उपजाऊ होना वहाँ की मिट्टी पर निर्भर है। खनिज पदार्थ, जीव-जन्तु और उद्भिज के संयोग से मिट्टी बनती है। मिट्टी के मुख्य उपादान बालू और चिकनी मिट्टी हैं। इनके कम ज़ियादा मेल से खेत की मिट्टी की कई क़िस्में होजाती हैं, यथा–काली, धाही, पीली व दुमट, बालू, रेतीला व भूड़, बंजर, ऊसर।

काली मिट्टी—इसमें चिकनी मिट्टी और सड़ी हुई वनस्पति का भाग अधिक होता है, खेती के लिये यह सब से अच्छी मिट्टी है। मालवा प्रांत में यह मिट्टी सर्वत्र पाई जाती है। ताल, तलयों की मिट्टी इससे मिलती जुलती होती है।

धाही व बाँगर—इसका रंग खाकी होता है और बालू की अपेक्षा चिकनी मिट्टी का भाग अधिक रहने से फ़सल के लिये यह मिट्टी भी बहुत अच्छी गिनी जाती है, ऐसी मिट्टी में सब तरह की फ़सलें अच्छी पैदा होती हैं।

पीली व दुमट—इसमें चिकनी मिट्टी और बालू का समान भाग रहता है। रंग पीला होता है इसलिये इसे पीली मिट्टी कहते हैं। खनिज पदार्थों का भाग अधिक रहने से ऐसी मिट्टी में अनाज की फ़सलें अच्छी होती हैं।

भूड़—इस ज़मीन में चिकनी मिट्टी की वनिस्वत वालू का भाग अधिक रहता है, इसीलिये कुछ फुसफुसी होती है और पानी पड़ने से जल्द गल जाती है। ऐसी मिट्टी में मोठ, बाजरी, मूँगफली, शकरकन्द, गाजर, मूली, मतीरा आदि की फ़सलें अच्छी होती हैं।

वालू—ऐसी ज़मीन में सिर्फ़ मोठ, बाजरी, मतीरा आदि कुछ जिन्सें ही केवल बरसात में होती हैं। मारवाड़ और बीकानेर में प्राय: ऐसी ही ज़मीन है।

बंजर व पड़त—जो ज़मीन मुद्दत तक जोती बोई नहीं जाती और पड़ी रहने से झाड़ झंकाड़ उग कर ख़राब हो जाती है, उसे बंजर व पड़त कहते हैं। अच्छी तरह खाद-पास डाल कर जोतने बोने से ऐसी ज़मीनें काश्त के योग्य हो सकती हैं।

ऊसर—रेह और क्षार का अधिक परिमाण बढ़ने से ज़मीन ऊसर हो जाती है। ऐसी ज़मीन में घास तक नहीं उगती। कहा भी है:—

"कल्लर खेत रहे जिहि पास, वाके होय नाज ना घास"।

हमारे इधर राजपूताने में पीवल, काँकड़, गोरवाँ, पिछोड़, तालाबी आदि भूमि के विभाग किये जाते हैं।

पीवल व चाही—उस ज़मीन को कहते हैं, जो किसी कुएं (बेरा) पर होती है, इस ज़मीन में ऊनालू (ख़रीफ़) (रबी) दोनों ही फ़सलें होती हैं।

काँकड़ व वीरानी—ऐसी ज़मीन का नाम है, जिसमें सिंचाई का कोई साधन न हो। इसमें तिल, ज्वार, चना आदि की फ़सलें अच्छी बरसात हो जाने पर हो जाती हैं। कहावत है:—

"खेत बारानी, जैसे दान राजानी"

गोरवाँ व माल—उस ज़मीन का नाम है, जिसकी सिंचाई किसी तालाब व बन्ध की मोरी द्वारा होती हो। यह ज़मीन बहुत अच्छी समझी जाती है। इनके पीछे जो ज़मीन रहती है, उसे पिछोड़ कहते हैं।

तालाबी—तालाबों और बन्ध, नदी, नाडों के पेटे की ज़मीन को तालाबी ज़मीन कहते हैं। बरसात के अन्त में इनका पानी निकाल कर खेती की जाती है। इसमें बिना खाद पास डाले ही पुष्कल अन्न पैदा हो जाता है।

गाँव गोरवाँ—बस्ती के पास की गोहानी ज़मीन को गाँव गोरवाँ कहते हैं। इसमें खाद का अंश अधिक रहता है।

तीसरी क्यारी

गाय, बैल आदि पशु

खेती गाय बैलादि पशुओं पर ही निर्भर है। हल जोतना, गाड़ी खींचना, पुर-रहँट चलाना, पटेला फेरना, अनाज भूसा अलग करना, खेत में गाड़ी भर खाद डालना, खेत से अनाज भूसा, घास, कड़वी घर पहुँचाना आदि २ सब काम बैलों द्वारा ही होते हैं। इसलिये कृषकों को एक दो जोड़ी बैलों के सिवाय दो-चार गाय-भैंस भी अवश्य रखना चाहिये। घर का गोबर, दूध, दही, घृतादि हो जाने के सिवाय किसान को इन पशुओं से बहुत बड़ी मदद मिलती है। इस बात को राजपूताने के जाट और गूजर बहुत अच्छी तरह जानते हैं। सौ पचास गाय, बैलों और भैंसों आदि को लेकर ये लोग हज़ार २ पाँच २ सौ भेड़ बकरियों का रेवड़ रखते हैं। रेवड़ रखना बड़े लाभ का व्यवसाय है। रोज़ दो चार रुपये का दूध-दही हो जाने के अलावा साल में सैकड़ों, हज़ारों रुपये की ऊन और उनके बच्चे-बच्चो आदि हो जाते हैं। सच पूछो तो यही "गोधन" करसों को अभी तक जिलाये हुए है। नहीं तो सूदखोर बोहरों और महाजनों ने उन्हें कभी का नोच खाया होता। कहावत है:—

" खेती कर कर करसा मरे।
बोहरा बैठा कुठिला भरे॥"

पर उसी "गोधन" की उन्नति की ओर कृषकों का जैसा चाहिये वैसा ध्यान नहीं है। उनकी लापरवाही के कारण पशुओं की नसल दिन पर दिन खराब होती चली जाती है। अब पहिले जैसे बलिष्ठ, सुडौल, ऊँचे क़द के गाय बैलादि बहुत कम देखने में आते हैं। जहां एक २ गाय-भैंस के दस २ बीस २ सेर दूध नित का होता था, वहां आज उनके बच्चों को पेट भर कर पीने को भी दूध नहीं मिलता। इसका मुख्य कारण अच्छे सांडों का अभाव है। हमारे देश में धर्मात्माओं के यहां मृत व्यक्तियों के नाम पर सांड छोड़ने की एक पुरानी प्रथा है पहले सांड पूज्य भाव से देखे जाते थे, उनको खेत से मारना व हांकना पाप समझा जाता था, परन्तु कृषकों की सांडों के प्रति अब वह श्रद्धा नहीं रही है। इसीसे आधुनिक समय में सांड छोड़ने की प्रथा कम पड़ गई है, जो कोई बहुत छोड़े भी जाते हैं, वह अविवेकी किसानों के लट्ठों की मार के मारे पनपने नहीं हैं। विचार कर देखा जावे तो सांडों का खुले चरना,

फिरना निरर्थक नहीं है। स्वतन्त्र जल-वायु में रहने सहने से उनके शरीर बनते हैं। मादीनों पर बलिष्ठ साँडों के पड़ने से नसल का सुधार होता है। ऐसी दशा में साँडों द्वारा खेती-बाड़ी की थोड़ी बहुत क्षति भी क्षन्तव्य है। अब कितने ही ज़िलों और राज्यों में वहाँ की सरकार द्वारा अच्छे साँडों के पालन-पोषण का प्रबन्ध किया जा रहा है।

ऐसे ही गाँवों के ज़मींदार, नम्बरदार, पटैल, पटवारी गाँवाई खर्च से अपने २ गाँवों में खिड़क और बाड़ों में रखकर अच्छे साँडों का प्रबन्ध कर सकते हैं, परन्तु केवल अच्छे साँडों
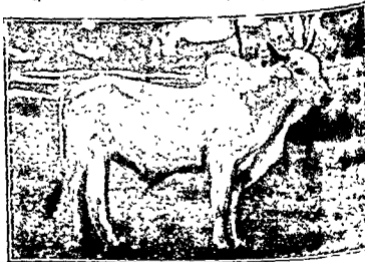
अच्छा साँड।

का प्रबन्ध कर देने से ही नसल का सुधार नहीं होगा। हमें इसके साथ ही साथ गाँव से निर्बल और निकम्मे साँडों का

बीज नाश कर देना पड़ेगा। इसका सुगम उपाय यही है कि दो चार अच्छे बछड़ों को रखकर गाँव के कुल बछड़े और नर मवेशी दो वर्ष के होने के पहिले वधिया (अख़्ता) कर दिये जावें। नहीं तो वह मादीन पशुओं पर पड़ कर नसल को सुधरने नहीं देंगे। कहावत है:—

"न बांस होगा न बाजेगी बांसुरी"

साथ ही पशुओं के लिये उत्तम जल-वायु और उत्तम खानपान का प्रबन्ध होना वाञ्छनीय है। सुबह मवेशियों को जङ्गल में हाँक देना और शाम को बिना चारे पानी के खिड़क या बाड़े की हवालात में ठूँस देना एक बेरहम रिवाज है।

शुरू में अगर कुछ मादीन जानवर मय एक दो साँडों के, जहाँ के वह प्रसिद्ध हैं, वहाँ से मँगाकर रखलिये जावें, तो नसल की और जल्दी तरक्की होगी। भिन्न २ पशुओं के लिये नीचे लिखे क्षेत्र प्रसिद्ध हैं। कृषकों को अपनी आवश्यकतानुसार वहाँ से जानवर मँगाकर परीक्षा करनी चाहिये:—

गाय-बैल—हरियाना प्रान्त के सर्वोत्तम होते हैं इस प्रान्त में सिरसा, रोहतक, हाँसी-हिसार को आदि लेकर तमाम पूर्वी पंजाब शामिल है। पंजाब प्रान्त में बाँगर, मालवा, मान्टगोमरी पोठोवार, कच्छी और माँझ के क्षेत्र भी गाय बैलों के लिये विख्यात हैं। इनसे उतर कर मारवाड़ी गाय-बैलों का नम्बर है, मारवाड़ में थली, नागोर, साँचोर और मालानी इनके मुख्य क्षेत्र हैं। मुलतान, गुजरात और दक्षिण में मैसूर के भी पशु बहुत अच्छे होते हैं। मैसूर में राज्य की तरफ़ से उनको

नसल सुधारने पर अधिक ध्यान दिया जाता है। कराँची में आस्ट्रेलियन नसल की गायें पाली जाने लगी हैं। ये गायें मन सवा मन तक रोज़ाना दूध देती हैं।

भैंस, पाड़ा, पाड़ी भी हरियाना प्रान्त के अच्छे होते हैं। रोहतक, सिरसा और हिसार की कण्डी भैंसें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। मारवाड़, बम्बई, ग्वालियर, कोटा, धौलपुर और चम्बल की तलेटी के गाँव भी भैंसों के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं।

ऊँट।

ऊँटों के लिये—घोटरू, समखावा, जैसलमेर, मारवाड़, बीकानेर, भावलपुर और सिंध के क्षेत्र विशेष उल्लेखनीय हैं।

घोड़े—सिंध, काठियावाड़, मालानी, कच्छ और बालोतरा के प्रसिद्ध हैं।

भेड़-बकरियाँ—तिब्बत और काश्मीर को आदि लेकर मारवाड़ और बीकानेर की अच्छी होती हैं।

कभी २ पशुओं में बीमारी आजाने पर कृषकों को बड़ी हानि उठानी पड़ती है, क्योंकि गाँवों की तो बात ही क्या है,

अभी तक शहरों और क़स्बों तक में पशुओं के अस्पताल नहीं हैं। इसी लिए पाठकों की जानकारी के लिये पशुओं की कुछ बीमारियों का वर्णन यहां किया गया है:—

खुर पका रोग—इस रोग में पशुओं के खुर पककर उनमें कीड़े पड़ जाते हैं। यह रोग प्राय: बरसात में होता है। कीड़े मारने के लिये फ़िनाइल बड़ी अच्छी दवा है। इसकी दो चार बूँद डालने से ही कीड़े बात की बात में नष्ट हो जाते हैं। जहां फ़िनायल न मिले वहां उसके बदले मिट्टी का तेल काम में ला सकते हैं। थोवई (बापची) के पत्तों को चूना, क़लई के साथ पीस कर लुगदी बना खुरों में भरने से कीड़े मर जाते हैं। तूतिया, हींग, कपूर और दही के तोड़ को बराबर २ लेकर मरहम बनाकर लगाने से भी लाभ होता है। कीड़े मरने के बाद थोड़ा तेलादि लगाते रहने से दो चार छः दिन में पशु चंगे हो जाते हैं।

२ चेचक—पशुओं के लिये यह एक बहुत बुरी छूत की बीमारी है। एक पशु को हो जाने से गाँव के तमाम पशुओं में चेचक फैल जाती है। इसलिये इसके लक्षण प्रतीत होने पर ऐसे पशुओं को तुरन्त ही दूसरे पशुओं से अलग कर देना चाहिये। इस बीमारी के यह लक्षण हैं:—पशु का सुस्त हो जाना, मुँह गर्म और लाल हो जाना, कफ़ और लार का गिरना, कँपकँपी आना, कान लटक जाना, खून, आँव मिला पतला गोबर होना, जीभ, मुँह, नाक, आँख आदि के भीतर छाले पड़ जाना, कमर पर मुँह डाले पशु का सुस्त पड़े रहना। इनमें के कुछ भी लक्षण प्रतीत होने पर अलसी या चाँवल के

माँड * में नमक मिलाकर पशु को देना चाहिये। यदि पशु माँड को न पिये तो नाल के द्वारा हलक़ के नीचे उतार देना चाहिये। हर्ड, वहेड़ा और आँवले को एक २ छटाँक लेकर दो सेर पानी के साथ काढ़ा बनाकर आधसेर पानी रहने पर पिलाने से हरसूरत में लाभ होता है। कच्ची हल्दी ४ तोला लेकर ४ तोला गुड़ के साथ दिन में तीन चार बार पशु को खिलाने से चेचक रुकती है। बिना फूल वाली कंटकारी के जड़ के टुकड़ों के साथ २१ कालीमिर्च को पीसकर देने से भी चेचक नहीं निकलती। बीमारी की दशा में खाने को चाँवल का माँड, जौ का रँधा हुआ दलिया और मिलसके तो हरी दूब देना चाहिये।

३ खाँसी—बहुत बुरा रोग है, इससे पशु व्याकुल हो कर दिन पर दिन दुबला होता जाता है। कुछ खाने पीने की इच्छा नहीं होती। आँख, नाक से पानी गिरने लगता है। ये लक्षण प्रतीत होने पर अडूसा के पत्तों का रस आधपाव गुड़ के साथ दो। या एक छटाँक अदरक, १ छटाँक काली-मिरच को गुड़ के साथ बाँटकर खिलाओ। गले में घाव मालूम हों तो लोहे को तपाकर धीरे २ सेंकना चाहिये या हलका सा दाग दो।

४ अकड़ा—इस रोग में पशु का तमाम शरीर अकड़ कर चलने फिरने की शक्ति नहीं रहती। ऐसी दशा में गंधक ऽ= अलसी का तेल ऽ। और सोंठ ऽ= इन सब को घोंट छान

---

* माँड बनाने की यह रीति है, कि ऽ॥। तीन पाव चाँवल को डेढ़ घंटे तक पाँच सेर पानी के साथ उबाल कर मथ डालो, पीछे ठंडा होने काम में लाओ।

कर आधसेर पानी के साथ पशु को पिला दो। प्यास लगने पर नमक मिला हुआ पानी पीने को दो।

५ अफरा व पेट फूलना—अधिक चारा दाना और मौसमी घास खाजाने से यह बीमारी होती है। इसमें पशु का पेट फूल कर ढोल की भाँति बन जाता है। ऐसी दशा में पशु खाना पीना भूलकर जुगाली (रोंथ) करना तक छोड़ देता है। चीनी खांड और तेल की नाल देने से पशु को दस्त आकर लाभ होता है। या आधपाव पिसी हुई राई गर्म पानी में मिला कर पशु को पिला देना चाहिये।

६ पतले दस्त—लगने पर चांवल का मांड और जौ का आटा देना चाहिये।

७ सर्दी लग जाने पर—मेथी ऽ॥, बायकी पत्ती आधी छटांक, अजवाइन ऽ॥, आधसेर गुड़ के पानी के साथ औटा कर देने से बड़ा लाभ होता है।

८ खाड़ू रोग—में गाय, भैंस के थन लाल होकर वे लँगड़ा कर चलने लगते हैं। ऐसी दशा में तीन दिन तक आधसेर दही के साथ पावभर तिलों के तेल की नाल देना चाहिये।

९ गाय भैंस का थन—मारा जाने पर गाभिन होने पर एक पाव सरसों या तिलों के तेल की नाल प्रत्येक मास की शुक्ल पक्ष की दौज को ब्याने तक देवे।

१० हुहासा रोग में—गुड़ पुराना एक सेर और सौंफ पावभर को एक सेर पानी में औटाकर पिलावे।

११ गलफूला रोग—में ज्वर के साथ कानों और जबड़ों के नीचे गाँठें होकर गले में सूजन आजाती है। ऐसी दशा में साँस लेने की नली को बचाकर सूजी हुई जगह को गर्म लोहे से दाग दो। आध सेर गर्म पानी में ६ माशे फिटकरी मिला कर मुँह को धोओ और गंधक की धूनी लगाओ।

१२ पशु के शरीर के बाल गिर गये हों तो पानी में तिल पीस कर लेप करो।

१३ घाव होगया हो तो गधे की लीद को महीन पीस कर लगावे।

१४ बैलों के कंधे पर बोझ ढोने से सूजन या घाव होजावे तो तीन माशे अफ़ीम, एक तोला हल्दी, सरसों के तेल में मिला कर लगावे। सरसों का तेल नहीं मिले तो मीठा तेल ही गर्म करके मले। या नीम * का तेल लगावे।

१५ पशु के शरीर का कोई हिस्सा जल जावे तो प्याज़ का पानी या केले के पेड़ का रस लगाओ।

१६ पशु की जीभ पर काँटे होगये हों तो हल्दी और नमक मिला कर दिन में दो तीन बार मिलना चाहिये।

१७ पशु की आँखों से पानी आवे तो त्रिफला (हर्ड़, बहेड़ा और आँवला) के जल से आँखों को धोवे।

---

* नीम का तेल बनाने की यह रीति है कि नीम की पत्तियों की टिकड़ी बनाकर खौलते हुए तेल में छोड़ दे। पीछे जलजाने पर घोट छान कर तेल बनाले। निंबोली की गुठली से निकाला हुआ तेल मिलजावे तो और अच्छा है।

१८ जूएँ और चीचड़ होजावें तो नमक ४ तोला, सरसों का तेल ४ तोला, मिट्टी का तेल १ तोला मिला कर लगावे।

१९ कभी २ घास और चारे के साथ ज़हरीला कीड़ा खाकर पशु बेहोश होजाते हैं ऐसी दशा में दो सेर पानी में आध सेर सज्जी घोल कर नाल के द्वारा पशु को पिला देना चाहिये।

२० पशु की जीभ पर घाव या छाले पड़ जायँ तो पीपल की छाल की भस्म लगावे या पक्की ईंट से जीभ को रगड़ दे।

२१ मूर्छा रोग पर तेल के साथ लहसन खिलावे।

२२ दरका रोग पर दोनों सींगों के बीच के गड्ढे में चार पाँच दिन तक रेंड़ी का तेल भरे।

२३ गाय,भैंस के थनों पर दाने या घाव होजाने पर मक्खन या गिरी का तेल दिन में दो तीन बार लगावे।

चौथी क्यारी

खेती के यन्त्रादि

खेती के लिये "हल" आदि कई प्रकार के यन्त्रों की किसान को ज़रूरत होती है। उत्तम किसान वही है जिसके पास सब यन्त्र (औज़ार) हों। बिना सामान के खेती करना अक मारना है। हल, जूआ, पटेल (पुर), खेती, कुदाली,
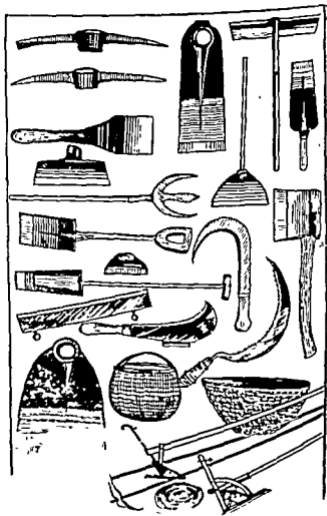
फावड़ा, हँसिया, खुरपी, गंडासी, कुल्हाड़ी, सिरावन (पटेला) कस्सी, जेई, रासें, नाथें, वर्त (लाव), गुफना, तासल, डला, डलियाँ आदि सामान तो आवश्यकतानुसार प्रत्येक किसान के पास होना ही चाहिये। बड़े किसान और ज़मींदार लोग एक दोव हल छकड़ा, छकड़ी, मिट्टी पलटने वाले एक दो नई क़िस्म के हल ऊख पेरने के कोल्हू, कुए से पानी निकालने के पम्प, खेत में खाद बखेरने, निराई करने, कड़वी काटने, दाना दलने, फ़सल को काटने, उनके गट्ठे बांधने, भूसा उड़ाने, बड़ा छोटा दाना छांटने, आटा पीसने, घास काटने, कटी हुई घास को सुखाने, घास की गाँठें बांधने आदि की कलें भी रख सकते हैं। इनसे समय और आदमियों की बड़ी बचत होती है। अब दिनों दिन मज़दूरी तेज़ होती जाने से अन्त को एक दिन इन कलों का व्यवहार करना ही पड़ेगा। नीचे के पतों से आवश्यकतानुसार यह चीज़ें ज़मींदार लोग अपने लिये मँगा सकते हैं:—

(१) सुपरिन्टेन्डेन्ट सिरिश्तह ज़िराअत व तिजारत कानपुर (यू० पी०)

(२) बर्न० एण्ड को०, कलकत्ता।

(३) टी० ई० टमसन एण्ड को० नं० ६ इस्प्लनेड ईस्ट, कलकत्ता

(४) वरदिङ्गटन पम्प कम्पनी लिमिटेड नं० १० क्लाइव स्ट्रीट कलकत्ता

(५) वालेस कम्पनी नं० ५ बैंकशेल स्ट्रीट, कलकत्ता।

पाँचवीं क्यारी

उपयुक्त खाद

उद्भिज और खेती के लिये खाद परमावश्यक खुराक है जैसे मनुष्य घी, दूध वग़ैरह के बिना हृष्ट, पुष्ट नहीं हो सकते वैसे ही खाद के बिना फ़सलें पूरी तौर पर उगती, बढ़ती औ फलती नहीं। कहा भी है—

"खाद देउ तो हुइहै खेती,
नहिं तो रहिहै नदिया रेती"

यों तो शुद्ध बालू को छोड़कर हर प्रकार की मिट्टी में थोड़ा बहुत खाद का अंश रहता है, पर एक ही खेत में बार २ फ़सलें पैदा करने से खाद का वह भाग चुक जाता है। इसलिये ऊपर से गाय बैलादि का गोबर और दूसरा खाद-पाँस डाल कर उस कमी की पूर्ति करनी होती है। कहा भी है:—

"खाद पड़े तो खेत, नहीं तो कूड़ा करकट रेत"

"खाद अपाढ़ खेत में डाले, तो फिर फसल खूब ही फाले"

उद्भिज, प्राणिज, खनिज और मिश्रित खाद के चार मुख्य भेद हैं:—

उद्भिज खाद—जो खाद नाना प्रकार के घास, वृक्ष, पत्ता और गुल्मादि के सूखने, सड़ने, गलने और मरने से पैदा होता है, उसे उद्भिज खाद कहते हैं। उद्भिज खादों में सरसों, बिनोला, रेंडी (अंडी) कोखली की खाद सर्वोत्तम है।

र इनमें से एक रेंडी की खली खाद के काम में आती है। ाप पशुओं को खिलाई जाती है। निबोली की गुठली की ली भी फ़सलों के बड़े काम की है, क्योंकि उसके देने से त में के कीट, पतंग नष्ट होजाते हैं। कहा भी है:—

"गोबर, मैला, नीम की खली, इनते खेती दूनी फली"

इसी तरह नील की गाँजी, ऊख की सीठी, पेड़ों के सूखे त्तों और उखड़ी हुई लता, घासादि को गीली जगह में गाड़ कर गलाने, सड़ाने से बहुत अच्छा खाद बन जाता है। जिस के देने से सब तरह की फ़सलें बहुत अच्छी पैदा होती हैं। नील की गाँजी गेहूँ की फ़सल की तो जान है। कहावत है:—

"गोबर राखी पाती सड़े, मोटा दाना तब ही पड़े"

कहीं नील, कुलथ, मोट, सरसों, सन आदि जिन्सों को खेत में बोकर कुछ बड़ा होने पर हल चला कर खड़ा जोत देते हैं। यह हरा खाद भी खेत को बड़ा मुफ़ीद होता है। कहा है:—

"सन के डंठल खेत छपावे, इनतें लाभ चौगुनो पावे"

वृक्षों के पत्तों की राख भी बहुत अच्छी खाद है यह राख भड़भूजों (भुर्जी) और भठियारों के यहाँ से सहज में ही प्राप्त हो सकती है।

प्राणिज खाद—जो खाद मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणियों के मल, मूत्र, हाड़ आदि से बनता है, उसे प्राणिज खाद कहते हैं। प्राणिज खादों में गाय, भैंस पशु आदि का गोबर

हाथी, घोड़ों की लीद, ऊँट, भेड़, बकरी की मेंगनी हो आम तौर पर खाद के काम में आती हैं। जीव जन्तु के हाड़ और मनुष्य का मैला सब प्रकार की फ़सलों के लिये एक उत्तम खाद है। परन्तु उन्हें अस्पर्श समझ कर हमारे देश के किसान प्रायः काम में नहीं लाते। अब कुछ शहरों और क़स्बों में मैले को गला सड़ा कर चतुर कृषक उसके खाद से लाभ उठाने लगे हैं। गोभी, आलू, अरवी, तम्बाकू आदि फ़सलों की तो यह खाद जान है। इसी प्रकार हड्डी का खाद भी फ़सल के लिये बड़ा उपयोगी है। उसे ढेकली से कूट कर या चक्की में पीस कर देने से तुरन्त लाभ होता है। यह भी नहीं हो तो राख मिट्टी के साथ साल छः महीना एक गढ़े में गला सड़ा कर काम में लासकते हैं। पर इतना करे कौन? गोबर का खाद भी तो हमसे नहीं बनता पहिले तो गोबर के उपला (कंडे) बनाकर जला लेते हैं। बरसात आदि मौसिमों में उपलों से बचा भी तो जैसा हुआ वैसा मकान के पास ढेर कर खेत में ला पटकते हैं। इसीसे उसका आधा चौथाई भी लाभ नहीं होता। कारण यह कि उसके सारे पदार्थ हवा, धूप और मेंह के पानी से-खुला पड़ा रहने के सबब-नष्ट हो जाते हैं। वही खाद यदि क़ायदे के साथ तैयार कर खेत में डाला जाय तो पहिले से दस बीस गुना लाभ हो। गोबर का खाद तैयार करने की एक सहज प्रक्रिया यह है:—

गाँव के आसपास या अपने खेत के नज़दीक आवश्यकतानुसार लम्बा चौड़ा पहिले एक गढ़ा खोदो। फिर उसकी तली में पशुशाला और अपने घर का कूड़ा करकट, राख, खर, पात जो कुछ हो ; . रोज के गोबरादि को डाल कर ऊपर से राख-मिट्टी ` अङ्गुल की तह से ढक दो, फिर ऊपर से उन्हीं

पशुओं का नित्य का पेशाव छिड़क दो तो और भी बेहतर है। नहीं तो पेशाव की गीली मिट्टी को ही खुरच कर उस ढेर पर डाल दो और बाहर से सूखी मिट्टी लाकर पशुशाला में उस जगह की पूर्ति करते रहो। इस प्रकार रोज करते २ जब गढ़ा ऊपर तक भरजावे तब सब मिट्टी की एक फुट ऊँची तह लगाकर उसे वैसा ही बन्द करके छोड़ दो। बनपड़े तो ऊपर से सिरकी (पाल) या छप्पर डाल कर कुछ छाया भी करदो। इस प्रकार दबा रहने से चार-छः महीने में अच्छा खाद तयार हो जावेगा। इसी प्रकार अपनी आवश्यकतानुसार दस, बीस गढ़े खाद के तैयार कर सकते हो।

ऐसे खाद के गढ़े अपनी ज़रूरत पूरी होने पर दूसरों को बेच आवें तो एक अच्छी रकम हाथ आसकती है। क़स्बों और शहरों की म्यूनीसिपैलटियों को मैले और कूड़े करकट के ऐसे गढ़ों से बड़ी आमदनी होने लगी है। मैले को इस तरह्र खाद में दुर्गंध नाम को भी नहीं होती और उसे म्यूनी का खाद कहते हैं।

भेड़, बकरियों और ऊँट की मेंगनी की खाद गोबर से भी अधिक ज़ोरदार होता है। इसीसे माली लोग बाग बगीचों के लिये इसी खाद का इस्तेमाल करते हैं। इसमें एक गुण और भी है कि दबा रहने से किसी प्रकार के कीट पतंग पैदा नहीं होते। हाथी और घोड़ों की लीद भी म्यूनी छः महीने गोबर की तरह गढ़ों और गढ़ों में दाब कर खाद के काम में लाई जा सकती है। ताज़ा तो कोई भी खाद काम में नहीं लाना चाहिये क्योंकि उसकी गर्मी से फ़सल भुलस जाती है।

कहीं २ लोग ऐसा भी करते हैं कि ढोरों और भेड़ बक-

रियों के रेवड़ (झुंड) महीना पन्द्रह दिन रात्रि को एक ही खेत में रखकर उनका मैला-पेशाब वहीं गलने सड़ने देते हैं इससे दो लाभ हैं एक तो खाद खेत की ज़मीन में रम जाता है। दूसरे पशुओं के चलने फिरने, उठने, बैठने आदि से वह की मिट्टी नरम पड़जाती है। कहावत है:—

"जिन खेतन में बैठें ढोर, सब खेतन में वह सिरमोर"

बतक, कबूतर, मुर्ग, मुर्गियों आदि जलचर और थलचर पक्षियों की बीट बड़ी ज़ोरदार खाद है। जो लाभ दूसरी मन खाद डालने से नहीं होता वह पक्षियों की मुट्ठी भर खाद में देखने में आता है। पर यह खाद हर जगह सरलता के साथ मिल नहीं सकता सूने मकानों में अलबत्ता चिमगादड़ों और अबाबील की बीट कहीं कहीं ज़रूर रहती है। चिली में समुद्र के सुनसान किनारों पर यह खाद बड़ी मुकलास के साथ मिलती है। इसे "गुआनों" कहते हैं, जो छोटे २ टीनों और थैलों में भरकर वहाँ से यहाँ आती है।

खनिज खाद—खनिज खादों में चूना, सेलखड़ी, शोरा, नमक, पोटाश, सोडा, फिटकरी, कोयला, नीलाथोथा, लोना-मिट्टी, चिकनी मिट्टी आदि मुख्य हैं। पर महँगी होने के कारण दो चार को छोड़ कर यहाँ के ग़रीब किसान उन्हें इस्तेमाल नहीं कर सकते। शोरा, नमक, लोना मिट्टी आदि को कहीं २ के कृषक अब खाद के काम में लाने लगे हैं। इनके प्रयोग से फ़सलों की जीवन शक्ति बढ़कर अनाज और भूसा दोनों ही अधिक परिमाण में पैदा होते हैं। मूल पदार्थों की तो शोरा और नमक जान है।

मिश्रित खादः—उद्भिज, प्राणिज और खनिज इन तीनों प्रकार के खादों के मिलाने से जो खाद बनता है, उसे मिश्रित खाद कहते हैं। यह बड़ा ज़ोरदार खाद होता है, पर किसान अधिकतर अपठित और धनहीन होने से हमारे देश में अभी ऐसे खादों का प्रचार नहीं है। कृषकों की जानकारी के लिये ऐसे खादों के दो चार नुसखे यहाँ दिये जाते हैं।

(१) खली के चूरे के साथ गाय बैलादि पशुओं का पेशाब मिलाने से एक ज़ोरदार खाद बनता है।

(२) १० मन गोबर के साथ एक मन खारी नमक के साथ बुझाया हुआ चूना मिलाने से ऊख के लिये उपयोगी खाद तैयार होता है।

(३) १२० मन गोबर, ६ मन अस्थि चूर्ण, २० मन राख मिलाने से ऊख के लिये अच्छा खाद बनता है।

(४) तीस मन गोबर, २ मन हड्डी का चूर्ण और ३ मन राख मिलाने से गेहूँ के वास्ते अच्छा खाद तैयार होता है।

(५) ४० मन गोबर, १० मन राख, ५ मन हड्डी का चूर्ण ३ मन सरसों की खली मिलाने से मूल पदार्थों के लिये अच्छा खाद तैयार होता है।

नीचे लिखे ठिकानों पर हरतरह के मिश्रित और रसायनिक खाद हरवक्त तैयार मिलते हैं:—

(१) शालीमार कम्पनी रसायनिक खाद विभाग, नम्बर ५ हैन्कोस स्ट्रीट, कलकत्ता।

(२) हिमालिया सीड स्टोर्स, बारलोगंज, मसूरी।
(३) सुपरिन्टेण्डेन्ट सीड स्टोर्स, लखनऊ (अवध)।
(४) टी० बी० एण्ड सन्स, पूना सिटी।
(५) दुबे ब्रादर्स लिमिटेड, चौक, इलाहाबाद।
(६) कृष्ण कम्पनी तेजाबघर, हथीवगंज, बनारस (यू० पी०)

छठी क्यारी

अच्छी जोत

देशी हल की जुताई।

उपयुक्त खाद, पशु आदि के बाद खेतों की जुताई भी अच्छी होनी चाहिये। क्योंकि फ़सल का एक समान उगना अच्छी जुताई पर निर्भर है। कहावत है:—

बड़े २ जागीरदार और ज़मींदारों को सुपरिन्टेन्डेन्ट महकमा ज़राअत तिजारत कानपुर से यह हल मँगाकर परीक्षा करनी चाहिये। गुड़गाँव और लायलपुर में भी इस प्रकार के अच्छे हल मिलते हैं। पहाड़ों और ऊबड़, खाबड़ भूमि के लिये हाथ से चलने वाले हलके हल भी हैं, पर ऐसी जगह अधिकतर लोग कुदाल और गैंती से ज़मीन खोदकर बीज बोते हैं। जैसे हमको अन्न खाने के पहिले पीसना पड़ता है, बस वही हाल फ़सल का समझो। बिना खेत की मिट्टी पोली और चूर चूर हुए फ़सल उससे अपने आहार की चीज़ें नहीं खींच सकती। इसलिये बीज बोने के पहिले खेत की मिट्टी का पोला और नरम होना परमावश्यक है। यह बात गहरी जुताई पर निर्भर है। इसको हमारे देश के किसान समझते भी हैं, गेहूँ और रबी की फ़सलों के लिये दस पन्द्रह बार हल और सँगार चलाकर खेत की मिट्टी को मैदा माफ़िक कर देते हैं। पर खरीफ़ की फ़सल के लिये ऐसी मेहनत नहीं करते, अलबत्ता काछी और माली तो अपनी ज़मीन को ऐसा ही सम्भालते हैं। कहा है:—

'मेड़ बाँध दस जोतन दे, दस मन बीघा मोसे ले"

अच्छी जुताई से खेत का खर पात उखड़ कर मिट्टी के साथ मिल जाने से खाद का काम देता है। चतुर किसान बहुधा बरसात के पहिले खेत को जोत कर छोड़ देते हैं। इससे धूप और हवा में के कई तत्व मिट्टी में मिल कर उसे मुलायम और पोला कर देते हैं और जितना पानी बरसता है, सब खेत की मिट्टी में रम जाता है। यह भी नहीं हो तो असाढ़ का पहिला पानी

दिया जाता। जैसा बुरा भला बीज बाज़ार या बोहरे के यहाँ प्राप्त होता है, ऐन वक़्त पर लाकर खेत में बो दिया जाता है। करें क्या, गाँवों में अभी बीज के ऐसे भंडार और दूकानें भी तो नहीं हैं। कानपुर, पूसा, सहारनपुर, पूना वग़ैरह में दो चार बीज के फ़र्म हैं। वे इतने बड़े देश की आवश्यकता को क्योंकर पूरा कर सकते हैं और न अभी यहाँ के अशिक्षित किसान बीज के लिये चौगुना, पचगुना दाम खर्च करने को तैयार हैं। देश की ग़रीबी के सबब यह लोग अपनी घर की फ़सल से तो बीज के लिये अच्छा और बड़ा दाना छाँट कर रख ही नहीं सकते। अलबत्ता माली और काछी जहाँ तहाँ थोड़ा २ तरकारियों आदि का बीज रख लेते हैं सो भी इसलिये कि यह बाज़ार में दाम देने पर भी नहीं मिलते। पंसारी आदि के यहाँ जो दवा दारू के लिये थोड़े बहुत बीज पड़े रहते हैं, उनका भरोसा नहीं। क्योंकि वह दो २ चार २ साल के पड़े हुए होते हैं। उगें या न उगें। अतएव किसान को अगर एक समान फ़सल लेकर हृष्ट, पुष्ट और निर्दोष दाना पैदा करना है तो या तो अपने घर की फ़सल में से अच्छा और सुडौल दाना छाँट कर रक्खे या अधिक दाम देकर दूसरों से मोल लेने की आदत डाले। कहावत है—

"जैसा बीज वैसा फल"

जब बीज का चौगुना, पचगुना दाम मिलेगा तब स्वतः ही गाँव २ बीज के भण्डार खुल जावेंगे। क्योंकि अपना लाभ सब चाहते हैं। फिर उत्तम बीज संग्रह करने के लिये ऐसी कुछ समझ बूझ की भी ज़रूरत नहीं। फ़सल कटने पर मोटे और निर्दोष दानों के बाल-भुट्टे छाँट कर रख लेना ही काफ़ी

है। छुटे दाने रखने हों तो चलनी या सूप से उन्हें हटका कर रख सकते हैं। सर्दी और नमी से अक्सर बीज खराब हो जाते हैं, इसलिये उन्हें सूखी और हवादार जगह में रखना चाहिये। रखने में इस बात का ध्यान रहे कि बीज के ढेर को पश्चिम की तरफ़ से आकर हवा लगे। इससे घुन या कीड़ा नहीं लगता यदि कुछ सूखी राख और नीम की पत्तियों का चूरा डाल दिया जावे तो और बेहतर है। कहीं २ अनाज को भूसा आदि में दबा देते हैं, यह भी बीज को सर्दी आदि से बचाने की अच्छी तरकीब है। घर के बीज के सिवाय दस पाँच बरस बाद एक प्रांत का बीज दूसरे प्रांत में बदल कर बोने से भी लाभ होता है। कोई २ बीज एक विशेष जगह के अच्छे होते हैं तो उनको उसी जगह से मँगाकर बोना चाहिये। जैसे कि गेहूँ के लिये चंदौसी और पूसा, बिनौले के लिये भड़ौंच, हींगनघाट, आलू के लिये दार्जिलिंग और फर्रुखाबाद, अरहर, सौंफ, सरसों, गेहूँ, बेझड़, बाजरा आदि के लिये कानपुर, जौ, ज्वार के लिये कोटा और मध्य राजपूताना। तिल, मूंग, मोठ, बाजरी के लिये मारवाड़ प्रसिद्ध है। अच्छा बीज भी हो पर वह समय पर और क़ायदे के साथ न बोया जावे तो भी मनचाहा लाभ नहीं होता फ़सल की फैलावट के मुताबिक उनको कम और अधिक दूर पर बोना चाहिये, यथा—

सन घनो बन बीगरो, मेढक फंदे ज्वार।
पैंड पैंड पर बाजरा, करै दलिद्दर पार॥

छीदो भलो जौ चना, छीदी भली कपास।
जिनकी छीदी ऊखड़ी, उनकी छोड़ो आस॥

दिया जाता । जैसा बुरा भला बीज बाज़ार या बोहरे के यहाँ प्राप्त होता है, येन केन प्रकारेण लाकर खेत में बो दिया जाता है। करें क्या, गाँवों में अभी बीज के ऐसे भंडार और दूकानें भी तो नहीं हैं। कानपुर, पूसा, सहारनपुर, पूना वग़ैरह में दो चार बीज के फ़ार्म हैं। वे इतने बड़े देश की आवश्यकता को क्योंकर पूरा कर सकते हैं और न अभी यहाँ के अशिक्षित किसान बीज के लिये चौगुना, पचगुना दाम खर्च करने को तैयार हैं। देश की गरीबी के सबब यह लोग अपनी घर की फ़सल से तो बीज के लिये अच्छा और बड़ा दाना छाँट कर रख ही नहीं सकते। अलबत्ता माली और काछी जहाँ तहाँ थोड़ा २ तरकारियों आदि का बीज रख लेते हैं सो भी इसलिये कि यह बाज़ार में दाम देने पर भी नहीं मिलते। पंसारी आदि के यहाँ जो दवा दारू के लिये थोड़े बहुत बीज पड़े रहते हैं, उनका भरोसा नहीं। क्योंकि वह दो २ चार २ साल के पड़े हुए होते हैं। उगें या न उगें। अतएव किसान को अगर एक समान फ़सल लेकर हृष्ट, पुष्ट और निर्दोष दाना पैदा करना है तो या तो अपने घर की फ़सल में से अच्छा और सुडौल दाना छाँट कर रक्खे या अधिक दाम देकर दूसरों से मोल लेने की आदत डाले। कहावत है—

"जैसा बीज वैसा फल"

जब बीज का चौगुना, पचगुना दाम मिलेगा तब स्वतः ही गाँव २ बीज के भण्डार खुल जावेंगे। क्योंकि अपना लाभ सब चाहते हैं। फिर उत्तम बीज संग्रह करने के लिये ऐसी कुछ समझ बूझ की भी ज़रूरत नहीं। फ़सल कटने पर मोटे और निर्दोष दानों के बाल-भुट्टे छाँट कर रख लेना ही काफ़ी

है। घुने खाने लगते हों तो चलनी या सूप से उन्हें हटवा कर रख सकते हैं। सर्दी और नमी से अक्सर बीज खराब हो जाते हैं, इसलिये उन्हें सूखी और हवादार जगह में रखना चाहिये। रखने में इस बात का ध्यान रहे कि बीज के ढेर को पश्चिम की तरफ़ से आकर हवा लगे। इससे घुन या कीड़ा नहीं लगता यदि कुछ सूखी राख और नीम की पत्तियों का चूरा डाल दिया जावे तो और बेहतर है। कहीं २ अनाज को भूसा आदि में दबा देते हैं, यह भी बीज को सर्दी आदि से बचाने की अच्छी तरकीब है। घर के बीज के सिवाय दस पाँच वर्ष बाद एक प्रांत का बीज दूसरे प्रांत में बदल कर बोने से भी लाभ होता है। कोई २ बीज एक विशेष जगह के अच्छे होते हैं तो उनको उसी जगह से मँगाकर बोना चाहिये। जैसे कि गेहूँ के लिये चंदौसी और पूसा, बिनौले के लिये भड़ौंच, हींगनघाट, आलू के लिये दार्जिलिंग और फर्रुखाबाद, अरहर, तीसी, सरसों, गेहूँ, बेभड़, बाजरा आदि के लिये कानपुर, जौ, ज्वार के लिये कोटा और मध्य राजपूताना। तिल, मूँग, मोठ, बाजरे के लिये मारवाड़ प्रसिद्ध है। अच्छा बीज भी हो पर वह समय पर और क़ायदे के साथ न बोया जावे तो भी मनचाहा लाभ नहीं होता फ़सल की फैलावट के मुताबिक उनको कम और अधिक दूर पर बोना चाहिये, यथा:—

सन घनों बन बीखरो, मेढक फन्दे ज्वार।
पैंड पैंड पर बाजरा, करे दरिद्दर पार॥
छीदो आछो जौ चना, छेदी भली कपास।
जिनकी छिदी ऊखड़ी, उनकी छोड़ो आस॥

हिरन छलाँगन काकड़ी, पग पग बुवै कपास।
कहियो जाय किसान सों, बोवो घनी कपास॥

एक बीघे में कौन जिन्स कितनी बोनी चाहिये इसके लिये भी कहावत है:—

जौ गेहूँ बोवे पाँच पसेरै, मटर को बीघा तीसे सेर।
बोवे चना पसेरी तीन, तीन बीघा में जुन्हरी कीन॥
दो सेर मेथी अरहर मासौं, डेढ़ सेर बीघा बीज कपास।
पाँच पसेरी बीघा धानै, तीन पसेरी जड़हन मान॥
डेढ़ सेर बजरा बजरी सँवा, कोदों काकुन सोयाँ बुवाँ।
दो सेर मूँग मसीना जान, तिल्ली सरसों अजुँरी मान॥
बर्रे बीघा दो सेर बुवाओ, डेढ़ सेर बीघा तीसी लाओ।
इहि विधि सों जब बुवै किसान, दूने लाभ की खेती मान।
कदम कदम पर बाजरा, पैंड कुदानी ज्वार।
ऐसो बोवे जो कोई, घर घर भरैं कुठार॥

इसके अलावा हवा, पानी, प्रकाश, नमी, गर्मी और ऋतु आदि का भी ज्ञान होना परमावश्यक है, क्योंकि कोई चीज़ किसी महीने में बोई काटी जाती है तो कोई किसी में। यथा:—

"पुष्य पुनर्वसु बोवे धान, अश्लेषा जुन्हरी परमान।
मघा मसीना बोवे पेल, तब दीजे पर हल में ढेल॥
चना पकत है चैत में, अरु गेहूँ वैशाख।
कातिक पाकै बाजरा, मँगसिर पाकै ज्वार॥

१ पसेरी, २ ज्वार, ३ तूर, ४ उड़द, ५ चावल, ६ अगहना चावल, ७ मुट्ठी भर, ८ कुसुम, ९ अलसी।

फिर कोई बीज छिटकवाँ बोये जाते हैं तो कोई एक कतार में दोन या नलों के बने चोंगे के ज़रिये किसी को हल, मशीन, बखर व स्वाद पदार्थ में बोय तैयार करनी होती है। मोटे हिसाब से हमारे देश में खरीफ़ और रबी की दो फ़सलें होती हैं। खरीफ़ की उपज में कपास, सनी, ककड़ी, अरहर, मोठ, बाजरा, ज्वार, तिल, उड़द, मूँग मखोना, सन, पटसन आदि मुख्य हैं जो आषाढ़ तक बोई जाती हैं और कार्तिक अगहन में कट जाती हैं एक अरहर पूरे दस महीना लेती है। रबी की फ़सलें जिनमें गेहूँ, चना, जौ, मटर, तीसी, कुसुम, सरसों, पोस्त आदि की पैदावार है। यह कार से अगहन तक बोई जाती हैं और चैत्र वैशाख में कट जाती हैं। बीज बोते समय यह भी याद रक्खो कि वह न तो ज़मीन के ऊपर पड़ा रहे और न बहुत नीचे चला जाय। साधारण तौर पर जितना बड़ा बीज हो उसको उतना ही मिट्टी से दाब दो। गोभी सरीखे छोटे बीजों पर मिट्टी का पुरकामात्र लगा देना काफ़ी है।

ऊपर कह चुके हैं कि बीज को बहुत घना पास पास नहीं बोना चाहिये। अगर बहुत पास पास उगे हों तो निर्बल पौधों को निराई और गुड़ाई के समय हाथ से उखाड़ कर छितरा करदो। एक बीघा ज़मीन १ जरीब लम्बी १ जरीब चौड़ी होती है। ५५ गज़ का एक अँग्रेज़ी ज़रीब होता है। एक गज़ बराबर ३ फ़ीट के माना जाता है। इस हिसाब से १६५ फ़ीट का १ ज़रीब हुआ और १६५×१६५=२७२२५, वर्ग फ़ीट एक बीघे में हुए। अगर एक एक फ़ीट पर एक एक पौधा लिया जावे तो एक बीघे में २७२२५ पौधे हो सकते हैं। मान लो हमको पौंडा (गन्ना) बोना है तो एक बीघे में २७२२५

हिरन छलाँगन काकड़ी, पग पग बुवै कपास।
कहियो जाय किसान सों, बोवो घनी कपास॥

एक बीघे में कौन जिन्स कितनी बोनी चाहिये इसके लिये भी कहावत है:—

जौ गेहूँ बोवे पाँच पसेरें, मटर को बीघा तीसे सेर।
बोवे चना पसेरी तीन, तीन बीघा में जुन्हेरी कीन॥
दो सेर मेथी अरहँर मार्शे, डेढ़ सेर बीघा बीज कपास।
पाँच पसेरी बीघा धानें, तीन पसेरी जड़हँन मान॥
डेढ़ सेर बजरा बजरी सँवा, कोदों काकुन सोयाँ बुवाँ।
दो सेर मूँग मसीना जान, तिल्ली सरसों अजुँरी मान॥
बॅर्रे बीघा दो सेर बुवाओ, डेढ़ सेर बीघा तीसी लाओ।
इहि विधि सों जब बुवै किसान, दूने लाभ की खेती मान।
कदम कदम पर बाजरा, बैंड कुदानी ज्वार।
ऐसो बोवे जो कोई, घर घर भरें कुठार॥

इसके अलावा हवा, पानी, प्रकाश, नमी, गर्मी और ऋतु आदि का भी ज्ञान होना परमावश्यक है, क्योंकि कोई चीज़ किसी महीने में बोई काटी जाती है तो कोई किसी में। यथा:—

"पुष्य पुनर्वसु बोवे धान, असलेपा जुन्हरी परमान।
मघा मसीना बोवे पेल, तब दीजै पर हल में ढेल
चना पकत है चैत में, अरु गेहूँ बैशाख।
कातिक पाके बाजरा, मँगसिर पाके ज्वा

१ पसेरी, २ उड़द, ३ दर, ४ उड़द, ५ चावल
७ मुट्ठी भर, ८ कुसुम, ९ अलसी।

(५) सुपरिंटेन्डेन्ट अमीनाबाद पार्क, लखनऊ (अवध)
(६) सुपरिंटेन्डेन्ट सज्जन निवास गार्डन, उदयपुर (मेवाड़)
(७) सुपरिंटेन्डेन्ट हिमालिया सीड्स स्टोर, बारलोगंज, मंसूरी (यू० पी०)
(८) सुपरिंटेन्डेन्ट अवध सीड्स स्टोर, लखनऊ (अवध)
(९) सुपरिंटेन्डेन्ट स्टेट नरसरी, दरभङ्गा (बिहार)
(१०) मिनरवा नरसरी कृषिशाला, श्यामबाज़ार, कलकत्ता
(११) सुपरिंटेन्डेन्ट स्टेट गार्डन्स, कोटा (राजपूताना)
(१२) सुपरिन्टेन्डेन्ट कम्पनीबाग, सहारनपुर (यू० पी०)

आठवीं क्यारी

सिंचाई के पानी का सुपास
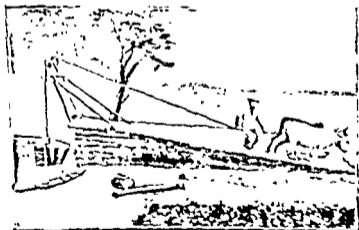
पदुर अर्थात् पुर

पौंडे होंगे। अगर वह एक एक आने को बिकें तो एक बीघे में १५०१॥-) का माल में हुआ। अगर मक्का बोई जावे तो ४०००० मक्के हो सकते हैं अगर उन्हें पैसे के आठ २ भी बेचें तो ३१२॥) के मक्के होंगे।

अगर कोई कहे कि किसान लोग फ़ीटों को क्या समझें तो गज़ों के बालिश्त बनालो। एक जरीब ५५ गज़ के ११० हाथ और ११० हाथ के २२० बालिश्त हुए २२०×२२०=४८४०० बालिश्त एक बीघे में हुए। अब अगर एक एक बालिश्त पर आलू या अरवी को बोया जावे तो ४८४०० पौधे होंगे। अगर एक एक पेड़ के नीचे पाव पाव भर भी आलू निकलें तो १२१०० सेर आलू होंगे अगर आलू का भाव रुपये का ॥ऽ सेर हो तो एक बीघे में ६०५) रुपये के आलू होते हैं और लागत का एक बीघे पर २०५, रुपया भी रख लिया जावे तोभी ४००) रुपये का लाभ प्रति बीघा हो सकता है, । तक़दीर की बात दूसरी है:—

"करमहीन जो खेती करै, मरै बैल या सूखा परै"

अब उत्तम बीज मिलने के कुछ फ़र्मों के नाम यहाँ दिये जाते हैं। किसानों को उन्हें अपनी आवश्यकतानुसार मँगाकर परीक्षा करनी चाहिये:—

(१) सुपरिंटेन्डेन्ट ज़राअत व तिजारत कानपुर (यू० पी०)
(२) सुपरिंटेन्डेन्ट एग्रीकलचर कालेज, पूसा (बिहार)
(३) टी० बी० एण्ड संस० सेड मर्चेन्ट, पूना सिटी
(४) मेसर्स एल० आर० आदर्श सीड्स मैन, नरसरी मैन, सहारनपुर (यू० पी०)

(५) सुपरिंटेन्डेन्ट अमीनाबाद पार्क, लखनऊ (अवध)
(६) सुपरिंटेन्डेन्ट सज्जन निवास गार्डन, उदयपुर (मेवाड़)
(७) सुपरिंटेन्डेन्ट हिमालिया सीड्स स्टोर, बारलोगंज, मंसूरी (यू० पी०)
(८) सुपरिंटेन्डेन्ट अवध सीड्स स्टोर, लखनऊ (अवध)
(९) सुपरिंटेन्डेन्ट स्टेट नरसरी, दरभङ्गा (विहार)
(१०) मिनरवा नरसरी कृषिशाला, श्यामबाज़ार, कलकत्ता
(११) सुपरिंटेन्डेन्ट स्टेट गार्डन्स, कोटा (राजपूताना)
(१२) सुपरिन्टेन्डेन्ट कम्पनीबाग़, सहारनपुर (यू० पी०)

आठवीं क्यारी

सिंचाइ के पानी का सुपास

पइर अर्थात् पुर

खेती-बाड़ी के लिये पानी सब से ज़रूरी चीज़ है, कारण यह कि एक तो पानी खुद फ़सल की खुराक है, दूसरे खाद वगैरह अन्य चीज़ों को भी, फ़सल बिना पानी की सहायता के खेत की मिट्टी में से प्राप्त नहीं कर सकती। इसलिये सब से पहिले खेती के लिये सिंचाई का सुपास होना बहुत ज़रूरी है। क्योंकि उद्भिज में सब से अधिक पानी का ही हिस्सा है पर हमारे प्रान्त मारवाड़ में सदा पानी का अकाल ही बना रहता है इस अकाल के विषय में कहावत है:—

> पग पूगल सिर मेड़ते, उदरज बीकानेर ।
> भूल्यो चूक्यो जोधपुर, ठावो जैसलमेर ॥

यह पानी हमें मेंह से प्राप्त होता है, पर मेंह बरसात के चार महीनों को छोड़कर बराबर सब मौसिमों में होता नहीं इसलिये हमें तालाब, बांध, नदी, नहर और कुओं से पानी लेकर सिंचाई की योजना करनी पड़ती है। इनमें बन्ध, तालाब और नहर की सिंचाई बड़े आराम की है। मोरी खोली नहीं कि खेत भर गया। कहावत है:—

"खेत वही जो भेंट नहरी, वाके मिलते मत लै दहरी"

जहाँ खेत ऊँचे होते हैं और मोरी का पानी नहीं पहुँचता, वहाँ लेंड़ो (बेड़ी) से काम लेते हैं। लेंड़ो बांस की बनी हुई कि[illegible] एक टोकनी सी होती है। इस टोकनी की अगल [illegible] रस्सी बँधी रहती हैं, जिनको दो आदमी दोनों [illegible] खेत में पानी उछालते हैं। पर पानी के यह [illegible] नहीं हैं। ज्यादातर सिंचाई कुओं से ही

होती है, क्योंकि यह हर जगह खोदे जा सकते हैं। पानी की ऊँचाई गहराई और देश भेद के लिहाज़ से कुए में से पानी निकालने के कई तरीक़े हैं पर उनमें ढेकली, अरट (रहँट), चड़स और हर प्रकार के पम्प मुख्य हैं।

ढेकली—जहाँ पानी ज़मीन के पास बहुत थोड़ी गहराई पर ही निकल आता है, वहाँ प्रायः ढेकली से काम लेते हैं, क्योंकि इसमें चड़स बैलादि किसी की कुछ ज़रूरत नहीं होती, एक लकड़ी की बल्ली, मटका और रस्सी का टुकड़ा काफ़ी होता है। फिर एक साधारण आदमी भी बल्ली को हाथ से ऊँचा-नीचा कर सहज में मटका डुबोकर पानी निकाल लेता है छोटे खेतों की सिंचाई के लिए यह तरीक़ा बहुत उम्दा है।

एक बैल का अरट
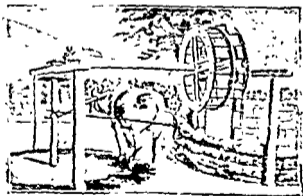
अरट—इसे रहँट भी कहते हैं और कुए से पानी निकालने का यह बहुत अच्छा तरीक़ा है। इसमें चमड़े व रस्सी की माल में तरा ऊपर कई मिट्टी या टीन की डोलियाँ लगी रहती हैं। बल के घूमने से माल घूमती है जिससे यह डोलियाँ एक के बाद एक ऊपर आकर खाली होती रहती हैं। इस तरह पानी का सिलसिला बराबर जारी रहकर तार नहीं टूटता। यह पानी सर्दी, गर्मी, बरसात हर मौसिम में एक समान काम देता है। कृषक को हर वक़्त पारछे के पानी में भी खड़ा नहीं रहना पड़ता और न किसी तरह की जान जोखों है।

चड़स—इसे मोट व पुर भी कहते हैं। यह एक चमड़े का बड़ा थैला है, जा ऊपर लोहे या लकड़ी का करतू लगा कर बनाया जाता है। यह दो तरह का होता है एक पोटल्या दूसरा सूँड़िया। पोटल्या में दो आदमियों की ज़रूरत होती है पर सूँड़िया में पुरहा बिना ही सिर्फ़ हाँकने वाले से काम चल जाता है। क्योंकि सूँड़ की रस्सी जिसे सिंडोरा कहते हैं तनने से सूँड़ के द्वारा पुर आप से आप खाली होजाता है चड़स खींचने में प्राय: दो बैल लगते हैं, पर कहीं २ जसा कि आगे के चित्र में देखते हो एक बैल से भी चड़स चलता है। कुएँ में ऊँचा पानी होने पर कोई २ बैलों को उल्टा भी चलाते हैं। यह बैलों पर बड़ा अन्याय है और इसे तुरन्त बन्द करना चाहिये। सिंचाई के समय इस एक बात का ध्यान अवश्य रहे कि ऊसर ज़मीन में होकर कुएँ का पानी खेत में न जावे नहीं तो रेह पैदा होकर फ़सल को हानि पहुँचावेगा।

ढेंकली

दिक-यन्त्रालय, अजमेर.

एक बैल का चड़स
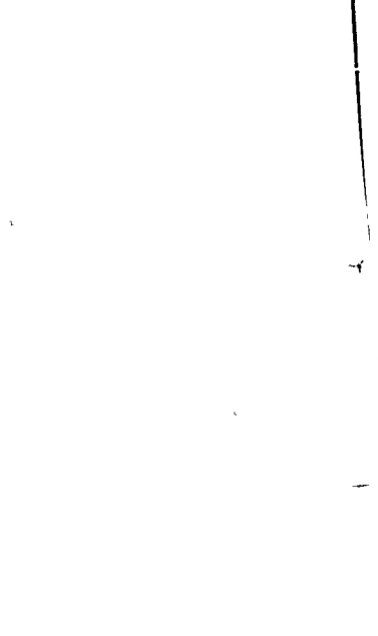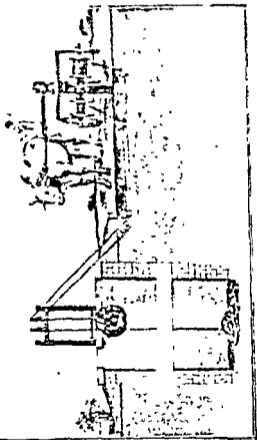
पम्प—कुएँ से पानी उठाने की कल को पम्प कहते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं। कई आदमियों द्वारा चलाये जाते हैं, तो कई बैलों के ज़रिये से चलते हैं। सब से अच्छे और अधिक पानी खींचने वाले वे पम्प होते हैं जो इंजिन एवं भाप के द्वारा चलाये जाते हैं, इनकी क़ीमत तो बहुत होती है पर समय और आदमियों की बड़ी बचत होती है। बड़े पैमाने पर खेती करने से
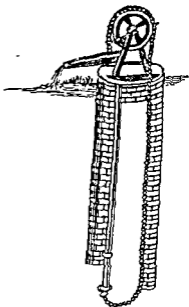
चड़स आदि द्वारा सिंचाई करने की बनिस्बत खर्च भी कुछ कम बैठता है। हाँ कुएँ में प्रचुर पानी होना चाहिये। यदि इंजिन का पम्प चलने से चार छः घंटे में कुएँ का जल टूट जावे, तो बर्मा चलवा कर अटूट पानी का प्रबन्ध करना चाहिये, नहीं पम्प के साथ आटा पीसने की चक्की आदि लगादो, जब तक कुएँ में पीछे जल आवे इंजिन की शक्ति चक्की चलाने में काम दे। कब कौन से खेत में किस मिक़दार में पानी देना चाहिये यह बात किसान की समझ पर निर्भर है। आम तौर पर जब खेत की मिट्टी सूखने लगे तो पानी दिया जाता है। नहर और बम्बों के किनारे अक्सर किसान अनाप सनाप पानी ... में भर देते हैं। यह भी बुरा है। अधिक पानी खेत में

ह उत्पन्न कर फ़सल के विनाश का कारण होता है। खेती
ाड़ी के लिये यह नीचे लिखे पम्प विशेष उपयोगी हैं।

१—इंजिन के ज़ोर से चलने वाली बड़ी मेशीन पम्प-इसमें
कोई एक फ़ीट मोटी धार कुएँ से निकलकर पड़ती है
मूल्य २५००) के लगभग।

२—इंजिन के ज़ोर से चलने वाली इससे कुछ छोटी मे-
शीन पम्प जिसमें दो बड़ी धार पड़ती हैं और एक घंटे में आधे
बीघे की भराई हो सकती है। मूल्य १२५०) रु० के लगभग।

३—पन्द्रह फ़ीट की गहराई से दो बैलों के ज़रिये पानी
निकालने वाला पम्प जिससे पाँच घंटे में पक्के बीघे की सि-
चाई होती है। मूल्य २००) रु० के लगभग।

४—यही तीस फ़ीट की गहराई से दो बैलों के ज़रिये
पानी खींचने वाला पम्प। क़ीमत २००) रु०।

५—बीस फ़ीट की गहराई से पानी उठाने वाला हाथ का
पम्प मूल्य ६६) रु०। यह लगभग २२ घंटे में पक्का बीघा सेम
सींचता है।

६—सांकल लगा डंडा फिर कर पानी निकालने वाला
पम्प यह भी हाथ से चलता है। मूल्य ७०) रु० के लगभग।

७—डंडा खींचकर एक बैल से पानी निकालने वाला
पम्प। मूल्य १००) रुपया।

८—एक बैल के ज़रिये तालाब में से पानी उठाने वाला
पम्प। मूल्य ८०) रुपया।

यह और दूसरी प्रकार के सब तरह के पम्प नीचे के पतों
पर मिल सकते हैं:—

१–सुपरिंटेंडेंट महकमे ज़राअत व तिजारत, कानपुर
२–बर्डिंगटन एण्ड कम्पनी लिमिटेड नं० १०,
क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता
३–वालेस कम्पनी नं० ५ बैंकशैल स्ट्रीट, कलकत्ता
४–यनं० एण्ड को०, कलकत्ता

नवीं क्यारी

अच्छी सम्हाल

अच्छी ज़मीन, अच्छा बीज और अच्छी फ़सल हो

पर जहाँ उजाड़ का भय न हो वहाँ बाड़ लगाना निरर्थक है। फ़सल पकने पर खेत के बीच में मचान (मेरा) बांधने से ही एक गोफन और खटके से काम चल जाता है। खेत में बीज बोते ही जंगली कबूतर आदि पक्षी और गिलहरी वग़ैरह जीव मिट्टी में से दाना निकालकर खा जाते हैं, सो एक दो दिन सुबह शाम देख लिया जाय तो बिहतर है।

क्योंकि:—

"सूना खेत पहरुआ सोवे, क्यों ना खेती ऊजड़ होवे"

मूँगफली वग़ैरह के अंकुर तो इनसे बचते ही नहीं। कितनेक कृषक खेत के बीच में एक दो लकड़ी गाड़कर उस पर काली हाँडी औंधा कर एक टोटका कर देते हैं या कपड़ा आदि पहनाकर कपट पुरुष खड़ा कर देते हैं। सच पूछो तो यह टोटके बड़े मतलब के हैं। इनको देखकर पशु पक्षी खेत में नहीं फटकते। कहावत है:—

भूठेहू करिये यतन, कारज बिगरे नाहिं।
कपट पुरुष लखि खेत में, आये मृग फिरि जाहिं।

बीज बोने के महीना पन्द्रह दिन बाद घास-फूँस, खर-पात वग़ैरह का खेत में जङ्गल खड़ा होकर फ़सल को दबा लेता है। उस वक़्त खुरपी या करसी से निरान करा देना आवश्यक है। निरान करा देने से एक तो खेत की मिट्टी

ली और नरम होकर फ़सल की जड़ों को ओर पास से अपने खाद्य पदार्थ संग्रह करने में मदद मिलती है। दूसरे अरपात उखड़ जाने से वे फ़सल की खुराक में साझा नहीं कर पाते। इस बात को कृषक लोग अच्छी तरह समझते हैं, नहीं तो यव आदि के खेतों में चार २ पाँच २ बार निराई क्यों करते। अब निराई करने के लिये हाथ द्वारा चलने वाली कई तरह की मेशीनें बन गई हैं। उनके व्यवहार से समय और धन की बहुत बचत होती है।

कभी २ ज्वार आदि के खेतों को निराई न कर खड़ी फ़सल को हलके हल से जोत देते हैं। इससे एक तो थोड़े परिश्रम में घास फूँस उखड़ जाते हैं। दूसरे फ़सल के डंठल मोटे होकर खूब पुष्ट बालभुट्टे आते हैं। कहावत भी है:—

"जो मोहि देवे तोड़ मरोड़, तापर उपजूँ कुठिला फोड़"

मक्की, खरबूजा, ककड़ी आदि फ़सलों को लोमड़ी, स्यार आदि जङ्गली जानवर बहुत हानि पहुँचाते हैं जो इनमें फल

आने पर रात की रखवाली के लिये एक दो आदमी और कुत्तों का प्रबन्ध कर देना उचित है। उनको ताड़ने में कुत्ते बड़ी मदद देते हैं। खड़ी खेती-बाड़ी का जङ्गली सुअर भी परम शत्रु है। इसे जड़ें बहुत भाती हैं, खाता नहीं तो फ़सल को उखाड़कर ही फेंक देता है। जहाँ इनका उपद्रव बहुत होता है वहाँ लोग खेत के चहुँ ओर गहरी २ खाइयाँ और ऊँची ऊँची बाड़ें बनाकर फ़सल की रक्षा सारी रात जाग जाग कर करते हैं। खाली भड़का और बन्दूक की मार से यह जानवर बहुत डरता है। पर बन्दूक चलाने में बड़ी होशियारी चाहिये क्योंकि घायल होने पर शब्द के साथ ऊपर आता है।

दिन में पक्षियों की रखवाली गोफन द्वारा खूब होती है। किसी वृक्षादि में टीन आदि का खटका लटकाकर बजा देने से भी पक्षी उड़ जाते हैं। कभी २ मूली, गोभी, सरसों, अरंड आदि के पत्तों पर एक प्रकार के कीट पतंग पैदा होकर उन्हें चट कर जाते हैं। ऐसे कीड़ों को पैदा होते ही चुन चुन कर नष्ट कर डालना चाहिये। बहुत बढ़ जाने की दशा में राख या तम्बाकू के पत्तों का पानी छिड़कना चाहिये। सुबह शाम धूप, लोबान, गंधक आदि की धूनी देने से भी लाभ होता है। ये सब कीट पतंग ताज़ा गोबर की खाद डालने से पैदा होते हैं। इसलिये जहाँ तक हो सके खूब पुराना गला हुआ खाद काम में लाओ। मेंगनी की खाद मिल जावे तो सबसे बेहतर है।

दीमक और चूहे गहरी सिंचाई से भाग जाते हैं। अगर सिंचाई के समय ढाँणे के पास जहाँ होकर खेत में पानी आता है। एक तोला हींग, २ तोला नमक, एक छटाँक नीला-थोथा की एक पोटली बाँधकर रख दी जावे तो और उपकार

होता। यह मात्रा एक बीघा खेत के लिये है, जितना बड़ा खेत हो उतनी तादाद में यह चीज़ें पोटली में एकदम न रखकर थोड़ी २ रक्खो, ताकि सब खेत में उनका पानी पहुँच जावे। सरसों और नीम की खली देने से भी दीमक आदि कीड़े नष्ट हो जाते हैं। कहीं कहीं दस बीस मटकियों या हँडियों में सूखा गोबर भर कर खेत में औंधा देते हैं। इस तरकीब से दीमक खेत से निकलकर इन गोबर भरी हांडियों में आ जाती है। जब देखो कि हांडियां दीमक से भर गई हैं तब उस गोबर को दूर फिंकवा दो और उसी तरह से फिर नया गोबर भरकर उन्हें औंधा दो। इस प्रकार दो चार बार करने से तमाम दीमक नष्ट हो जाती है। कच्चे गोबर और काठ कबाड़ में धरती की सील और नमी से दीमक उत्पन्न होती है इसे खेत में इनका संसर्ग ही न होने दो। कहीं दीमक की बांबी भी देखो तो वहां तुरन्त गर्म पानी या मिट्टी के तेल का घोल डालकर उसे नष्ट करदो।

कहीं २ आक के पत्तों को भी ढोरों में डाल देते हैं। ककड़ी, खरबूजा की ढोल और कांड़ों के लिये ढोरों के नीचे मरे हुए ऊँट का सिर और सूअर के लेंड लगाते हैं। टिड्डियां बढ़ी हुई फ़सल के लिये बहुत बुरी बला है। इनको जहां तक बने खेत में नहीं उतरने देना चाहिये। शोर गुल करके, ढोल और कांसे की थाली आदि पीटने से टिड्डियां खेत नहीं उतरतीं। आक और गोबर के धुएँ से भी बहुत भगती हैं। दस बीस टिड्डियों को एक बांस के पोले में भर कर फेंकवाने से भी बैठी हुई टिड्डियां उड़जाती हैं। जहां यह टिड्डियों का झुंड खेत को बैठता है वहां कभी २ अंडे दे देता है, जिससे बच्चे

निकल कर रेंगना पैदा होजाता है यह रेंगना टिड्डी से भी अधिक दुखदायी होता है। इसलिये जिधर से खेत में आता हो उधर को खेत के क़रीब खाइयाँ खोद कर मिट्टी से चूर दो। या खरपात के संग आग लगा कर जलादो। फड़के और कातरे का भी यही इलाज है। पानी की बड़ी नाँद, टप या किसी गढ़े के पास रात को आग जलाने या बड़ी लालटेन जलाकर रख देने से भी खेत के तमाम फड़के और कातरे समिट कर पानी में पड़ के नष्ट होजाते हैं।

गिरवी—इसे रोरी और रतवा भी बोलते हैं। यह प्राय: गेहूँ की फ़सल में लगती है। जब पत्तों और डण्ठलों पर पीले, लाल या काले चकते और लकीरेंसी नज़र आवें तब समझलो कि फ़सल में रोरी लग गई। रोरी लगते ही ऐसे पौधों को खेत से उखाड़कर तुरन्त अलग करदो। नहीं तो यह रोग तमाम खेत में फैल जावेगा। बदली के दिनों में अधिक पानी मिलने से या अधिक नम ज़मीन में बीज बोने से यह रोग होता है। यदि तमाम खेत में यह रोग फैल जावे तो तूतिया या तमाखू के पत्तों का पानी और सूखी राख छिड़कने से लाभ होता है।

कँडुवा—यह रोग अधिकतर बाल-भुट्टों पर नज़र आता है। इस रोग में दानों के ऊपर एक प्रकार की काली पपड़ी

जमने से दानों के भीतर का आटा झड़ जाता है और भीजने से थाल-मुट्ट खोखले प्रतीत होते हैं। कँडुआ नज़र आने पर ऐसी थालों को खेत से तोड़कर अलग कर देना चाहिये। सील और मेंह के पानी के सबब बीजों में कँडुआ पड़ता है।

घुन—यह एक प्रकार का चिपटा पतला छोटा कीड़ा है। जो पूर्वी वायु और ज़मीन की सील से गेहूँ आदि अनाजों, पौधों और काठ कबाड़ में स्वतः ही पैदा होकर उनको अन्दर ही अन्दर खोखला कर देता है। अनाज को थोड़ा धूप में सुखाकर राख नीम की सूखी पत्तियाँ आदि मिलाकर रखने से घुन प्रायः नहीं लगता। धान के भंडारों-कोठों में अगर पश्चिमी वायु आने का प्रबन्ध रक्खा जावे तो घुन से बचाव रहता है। धान के खत्तों और बखारों में फ़ीट दो फीट ऊँची आम, जामुन आदि के पत्तों की तह लगाकर अगर अनाज भरा जावे, तो अनाज की गर्मी के मारे घुन आदि किसी प्रकार का कीड़ा नहीं लगता। अगर इन खत्तों-कोठों को दो दिन पहिले गन्धक का धुवाँ देकर शुद्ध कर लिया जावे, तो और अच्छा है। घुन नज़र आने पर अनाज को धूप बताना चाहिये।

पई—यह घुन से भी भयंकर लट के माफ़िक छोटा कीड़ा है, जो साधारण तौर पर नज़र भी नहीं आता और अन्दर ही अन्दर लगकर गेहूँ का चून बना देता है। यह भी अन्न की नमी और ज़मीन की सील से पैदा होता है। नज़र आने पर घुन के माफ़िक रक्षा का उपचार करना चाहिये।

दसवीं क्यारी

फसलों का स्वभाव और उनपर प्रकृतिका प्रभाव

यह बात निर्विवाद है कि उद्भिज में जान होती है। गर्मी, हवा, मेंह, पानी, ऋतु परिवर्तन आदि का उनपर वैसाही असर होता है, जैसा कि जानदारों पर। हर तरह की फ़सलें भी उद्भिज का ही एक अङ्ग हैं, तब उनका भी उगना-बढ़ना, फलना फूलना प्रकृति पर ही निर्भर है। वह भी अपनी खुराक हवा, पानी, ज़मीन और प्रकाश से ही लेती हैं। खुराक का सुलभ कर देना किसान का काम है। कोई फ़सल कहीं अच्छी होती है तो कोई कहीं। एक को कोई खाद माफ़िक आती है तो दूसरी को और कोई। एक को कहीं का जलवायु अनुकूल होता है तो दूसरी को कहीं और का। आम, कटहल, लीची, मटर, तूर जैसी फ़सलें पूर्वी भूमि में फलती हैं, वैसी राजपूताने की भूमि में नहीं। फोग, रोजड़ा, करील, थोर, अनार, जौ, ग्वार, मूँग और मोठ जैसी राजपूताने में उपजती हैं, वैसी यू० पी० विहारादि में नहीं, कहावत है:—

> आकड़े की झोंपड़ी फोगन की बाड़
> बाजरी को सोगरा मोठन की दाड़ (दाल)
> देखी राजा मानसिंह थारी मारवाड़।

कोई फ़सलें शरद् ऋतु में होती हैं तो कोई ग्रीष्म में। कोई प्रधान देश में पैदा होती हैं तो कोई उष्ण-प्रधान देश में।

र, नासपाती, आलूबुखारा, केशर, कस्तूरी काश्मीर में अच्छी होती है तो नारियल, सुपारी, कालीमिर्च, लौंग, जायफल, जावित्री को दक्षिणी हिन्दुस्तान की आबहवा मानती है। भिन्न २ दिशा की हवा का भी फ़सलों पर भिन्न भिन्न असर पड़ता है। पश्चिम तथा दक्षिण पश्चिम की तरफ़ से चलनेवाली हवा से फ़सलों में फलन अच्छी होती है और दाना पुष्ट तथा मोटा पड़ता है। इसी प्रकार पूर्वी हवा से फलन कम होती है और फल काने पड़ जाते हैं। प्रकाश की ज़रूरत भी उद्भिज को उतनी ही है जितनी कि जीव जन्तु को। प्रकाश के बिना न तो वह पूरे बढ़ सकते हैं, और न उनके पत्तों में हरियाली ही रह सकती है। यह ज़रूरी है कि किसी को कम प्रकाश की ज़रूरत होती है और किसी को अधिक। पान, अनन्नास, हल्दी, फरन को अँधेरा सुहाता है, तो आम, बड़, जामुन, नीम और हर प्रकार की अनाज की फ़सलें अधिक प्रकाश चाहती हैं। यही कारण है कि वे छाया में नहीं पनपतीं। ऋतु और समय का भी फ़सलों पर पूरा प्रभाव पड़ता है:—

चढ़ते बरसे आद्रा, उतरत बरसे हस्त।
कितना राजा दंड ले, रहैं अनंद गृहस्त॥
"एक पानि जो बरसे स्वाँती, कुरमिन पहिने सोने की पाती"॥

इसलिये उन्हें ऋतु के मुताबिक समय पर बोना, समय पर सींचना और समय पर निराना काटना चाहिये। क्योंकि:— "औसर चूको डोमनी गावे ताल बेताल"। "अब पछिताये होत क्या, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत"।

यह विषय बहुत गहन है। इसलिये थोड़े में ही यहाँ कुछ दिग्दर्शनमात्र करा दिया गया है। विशेष हाल जानना हो तो इस विषय के वैज्ञानिक ग्रन्थों को देखो तो पौधों में भी कितनी ही चमत्कारिक बातें देखोगे। जैसे कि छुईमुई के पौधे की पत्तियाँ हाथ लगाते ही नीचे को गिरजाती हैं मानो उनको हमारे इस व्यवहार से कुछ पीड़ा हुई। कमल का फूल सूरज निकलने पर खिलता है, पीछे बन्द होजाता है। सूरजमुखी का फूल सूरज के सामने रहता है। कुमोदिनी चन्द्रमा को देख कर प्रसन्न होती है। कुम्हड़े की जैसा अँगुरी बताने से ही मरजाती है।

ग्यारहवीं क्यारी

नाना प्रकार की फ़सलें

गेहूँ।

गेहूँ सब अन्नों में उत्तम अन्न है इसी से कहावत है:—

"गेहूँ कहै सुनोरे बीर, मैं हूँ सब नाजन का मीर"

यह दूधिया, दाउदी, बाजा कठबाजा, काठा, पीसी मुड़िया कई प्रकार का होता है। पर इनमें पूपा और चन्दौसी का सफ़ेद गेहूँ सर्वोत्तम होता है, काठा गेहूँ पिसने में कड़ा पिसता है, इसीलिये उसका दलिया और लापसी बनाते हैं, बाजा गेहूँ भी खाने में लज्ज़तदार और नरम होता है। गेहूँ शुरू आसोज से लेकर शुरू अगहन तक पचीस, तीस सेर बीघा के हिसाब से बिहदी से बोया जाता है। पौधा इसका डेढ़

दो हाथ ऊँचा होता है। सिरे पर बालियाँ आती हैं। चैत में यह बालियाँ पीली पड़कर पक जाती हैं, उस वक्त गेहूँ को जड़ से काट लेना चाहिये। अधिक सूख जाने से दाना हलका पड़ जाता है। पीछे खलियान में लेजाकर गायटाकर (दायँ चला) अनाज भूसा अलग २ कर लेते हैं। गेहूँ की फ़सल के लिये बहुत ज़ोरदार खेत होना चाहिये। उसमें प्रति बी घा दस बारह गाड़ी घूरा (खाद) दे कई बार जोतकर खेत की मिट्टी बहुत नरम और चूर २ हो जाने पर बीज डालना चाहिये। अगर समय पर माहोट न हो तो गेहूँ के खेत में बीज उगने के बाद दो तीन पानी देने की ज़रूरत होती है। गेहूँ और चना मिलाकर जो फ़सल बोई जाती है, उसे गौचना तथा गेहूँ और जौ मिलाकर बोए जाने से जो पैदावार होती है उसे गोजों (गुजई) कहते हैं।

जौ।

जौ गेहूँ की प्रकार का एक अन्न है। फ़र्क़ यही है कि इस पर एक खोल भूसी की होती है और पिसने में गेहूँ से कड़ा

पिसता है। यह एक पुष्ट अन्न है और गेहूँ से सस्ता बिकता है। इसलिये हमारे देश में जौ की बहुत अधिक खपत है। इसकी खेती बहुत काल से भारतवर्ष में होती है, यहाँ तक कि वेदों तक में जौ का नाम आया है। यज्ञ हवनादि में इसका व्यवहार अब तक होता है। इसी से कहावत है:—

"जौ उठि बोले मैं बड़ धान, यज्ञ हवन में जिसका मान"

जौ का पौधा गेहूँ के मानिंद होता है। बालियाँ भी उसी प्रकार आती हैं पर पत्तों का रंग कुछ स्याही माइल होता है। इसमें जड़ के पास से ही बहुतसे डंठल निकलते हैं। बाक़ी सब परवरिश गेहूँ के समान ही समझो। यूरोप में जौ को सड़ा कर एक प्रकार की शराब निकालते हैं। मध्यराजपूताने का जौ बहुत मोटा और अच्छा होता है। युक्तप्रदेश और पंजाब में इसे चना मिलाकर बोते हैं। इस चना मिले हुए धान को बेभर कहते हैं। काश्मीर में एक प्रकार का बिना भूसी का जौ होता है, जिसे ग्रम कहते हैं।

जई।

यह जौ की जाति का एक भेद है। इसका पौधा जौ के पौधे से कुछ बड़ा होता है और डण्ठल भी अधिक निकलता है। इसलिये घोड़ों की चरी के लिये प्राय. जई बोई जाती है। बोने के एक महीने बाद ही इसकी हरी चरी काटकर घोड़ों को खिला दी जाती है। बाद को कटे हुए पौधे फिर बड़े हो जाते हैं। इस प्रकार तीन महीने में तीन बार जई की चरी लेने के लिये छोड़ देते हैं।
हो जाती है। पर
लेना चाहिये।

अधिक खेत में खड़ा रहने से बीज के दाने भड़ जाते हैं। एक बीघे में दस बारह मन अन्न और पन्द्रह बीस मन भूसा होता है। बीच में तीन चार महीने चरी चरा ली वह सूद में। इसलिये हमारे यहाँ के किसानों को इसे अवश्य बोना चाहिये। काल दुकाल में जई का आटा रोटी बनाकर खाया जा सकता है। बोने आदि की कुल प्रक्रिया जौ, गेहूँ के समान है।

चना।

यह रब्बी की फ़सल का एक हरदिलअज़ीज़ अन्न है। इसकी दाल खाई जाती है, चने के आटे को बेसन कहते हैं। बेसन की पकोड़ी, भुँजिया, सेव, लड्डू आदि अनेक पकवान बनते हैं। चना खाने से प्यास बहुत लगती है, इसी से यह कहावत प्रसिद्ध है:—

चना कहै मेरी ऊँची नाक, एक घर दलिये दो घर हाँक।
जो खावे मेरा इक टूक, पानी पीवै वह सौ घूँट॥

इसका पौधा हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा होता है, जड़ ज़मीन में दूर तक चली जाती है। छोटे पौधों को ऊपर से खोंटकर पत्तियों का साग बनाते हैं। हरे चनों को छोला, होला और बूट कहते हैं। इनको छीलकर हरे चनों का साग बनाते हैं। खरपात में सेंक कर भी खाते हैं। सूखे चने भी भाड़ में भुनवाकर चाबे जाते हैं। उनके लिये कहावत है:—

चना चबेना गंगजल, जो पुजवे करतार ।
काशी कबहुँ न छाँड़िये, विश्वनाथ का द्वार ॥

चनों के लिये अधिक जुताई, सिंचाई आदि की आवश्य-
ा नहीं । आसोज में अच्छा पानी हो जाने से कांकड़ ज़मीन
ः में यह बिना सिंचाई के हो जाता है:—

क्वार मास हो बरखा गहरी, लगे चना की घर घर ढेरी ।"

ऊपर से एक दो मावठ हो जावें फिर तो कहना ही क्या है
मदावट बरसी और खेती सरसी" तालाबों और नाडा, नाडी
के अगोड़-पिछोड़ में इसकी फ़सल अच्छी होती है और
बीज एक बीघे में दस बारह सेर पड़ता है ।

मटर ।

चना की क़िस्म का एक मोटा अन्न है । जो भादों से शुरू कर अगहन तक बोया जाता है । यह सब प्रकार की ज़मीन में हो जाता है । पर नदी और तालाबों के किनारे के खेतों में अच्छा फलता है । लता की तरह इसका पौधा कुछ बढ़कर फलियाँ लगने लगती हैं । प्रत्येक फली के अन्दर पाँच-छः दाने रहते हैं, प्रारम्भ में मटर के यह दाने मीठे होते हैं । घी में तलकर या तरकारी बना कर खाये जाते हैं ।

पकी मटर के दानों की दाल बनाई जाती है। बेझर के साथ मिल कर रोटी बनती है। गोल, चपटी, हरी, सफ़ेद, छोटी, बड़ी, काबुली, पटनाई कई प्रकार की मटर होती है। विलायती मटर का दाना और भी बड़ा एवं मोटा होता है। पर इसकी लताओं को सहारा देने की ज़रूरत है। बिना लकड़ी आदि का ठेका दिये इसकी फलन अच्छी नहीं होती। यू० पी० में एक प्रकार की तिपखिया मटर होती है। जो बोई जाने के तीन पक्ष में कटकर घर आ जाती है। नहर और बम्बा के किनारे के गाँवों में मटर की खेती बहुत होती है।

बारहवीं क्यारी

मक्की।

खरीफ़ की फ़सल का एक मोटी जाति का अन्न है। इसका लाल, पीला, सफ़ेद कई प्रकार का दाना होता है। ज्येष्ठ भादों तक मक्की बोई जाती है। जल्दी बोने से उसी खेत में रब्बी की फ़सल फिर होजाती है। पर अच्छी खाद और जुताई का होना ज़रूरी है। इसका पौधा चार-पाँच हाथ ऊँचा होता है। सिरे पर पराग केशर की बाल आती है। डण्ठल के बीच में एक से लेकर तीन चार तक मक्किया (अँड़ियाँ) निकलती हैं, जिनके सिरे पर एक बहुत मुलायम बालों जैसा भब्बा है। मक्की की इसी अँड़िया में

दाने पड़ते हैं, जो एक दूसरे से सटे हुए पंक्तिबद्ध होते हैं। दूधिया हालत में यह दाने बहुत मीठे होते हैं। इसीसे गरीब अमीर इन्हें आग में सेंक कर खाते हैं। कहावत भी है:—

मका कहे मैं सब की पाट, राजा, बाबू खावें ठाट।
रोटी मेरी लोग बनावें, घाट, राबड़ी करिके खावें॥

मक्की को दाना पड़ने पर तोते, कौवे आदि पक्षी, स्यार लोमड़ी आदि जानवर बहुत नुक़सान पहुँचाते हैं। इसलिये खेत के बीच में मचान (मेरा) बाँधकर उन दिनों रखवाली करनी होती है। दाना पकने पर मक्की के पेड़ों को जड़ से काटकर एक जगह टाल लगा देते हैं। फिर समयानुसार मक्कियों को डण्ठलों से तोड़कर दाना अलग कर लेते हैं। अधिक होने पर कोई २ गायटा भी करते हैं। एक बीघे के लिये पाँच, छः सेर बीज काफ़ी होता है और उसे छिटकवाँ बोते हैं। बोने का यह तरीक़ा अच्छा नहीं है क्योंकि छिटकवाँ बोने से कहीं तो पौधों का झुण्ड हो जाता है, कहीं एक भी पौधा नहीं उगता इसलिये एक २ कूँड बीच में खाली छोड़कर विहढो के ज़रिये सीधी पंक्तियों में बोना अच्छा है। इसमें एक तो फ़सल एक समान उगती है, दूसरे निराई आदि करने में बड़ा सुभीता होता है।

बीज बोने के पन्द्रह २ दिन के अनन्तर एक दो निरान भी करने पड़ते हैं। निराई के वक्त पौधों की जड़ में थोड़ी २ मिट्टी लगादी जावे तो और बिहतर है। क्योंकि मक्की गलत बहुत मानती है। अमेरिका में मक्की की पैदावार बहुत है और यह होती भी अच्छी है। इसकी कड़बी मँसों के लिये बहुत

सुफ़ेद है और दूसरे पशु भी चर लेते हैं। हरे डण्ठलों से कहीं २ शक्कर, सीरा, राब तैयार करते हैं। फोकस काग़ज़ बनाने के काम में आता है। दाने से कई प्रकार की मिठाइयाँ और शराब तैयार होती है। हमारे देश में मक्की की रोटी और घाट बनाकर खाते हैं। भाड़ में सेंककर फुल्लियाँ (खील) और परमल बनाते हैं।

ज्वार।

यह भी एक प्रकार का मोटा और बलिष्ठ अन्न है। ज्वार की खेती प्रायः सर्वत्र भारत में होती है, कोई तो इसे चारे के लिये बोते हैं, कोई अन्न के लिये। चीन देश में ज्वार की खेती गुड़ और शक्कर के लिये की जाती है, क्योंकि गन्ने की तरह ज्वार के डण्ठल में मिठास होता है। इसीलिये लड़के बाले उन्हें गन्ने की तरह चूसते हैं। ज्वार ज़मीन से बहुत कस खींचती है इसलिये खूब खाद पाँस डालकर इसे बोना चाहिये। चरी के लिये बोना हो तो उसे ज्येष्ठ-बैशाख में ही पलाव कर बो देना चाहिये। ऐसा करने से दो तीन बार इसकी चरी कट जाती है। ज्वार लाल, सफ़ेद, बैंगनी आदि कई रंग की होती है, पर उसके दो भेद मुख्य हैं। एक तो बँधे भुट्टे की, दूसरे खुले भुट्टे की, राजपूताने में प्रायः दोनों ही बोई जाती हैं। कहीं

तो ज्वार को खेत में बखेरवाँ बोते हैं। कहीं रबी की फ़सल की तरह एक लाइन में बोते हैं। एक बीघा के लिये चार पाँच सेर बीज काफ़ी होता है, पर चरी के लिये अट्ठाईस सेर तक बीज पड़ता है। अगर अच्छी तरह ज़मीन सँभाल कर बीज बोया गया हो तो निराई की ज़रूरत नहीं पड़ती, प्रायः कृषक खड़ी फ़सल में हलका हल चलाकर खेत की मिट्टी को गुरें (पोलाकर) देते हैं। गुरें देने से दाना और डण्ठल दोनों मोटे और बलिष्ट होते हैं। कहावत है:—

"जो मोहि देवे तोड़ मरोड़, ता घर उपजूँ कुठिला फोड़"

अगहन में ज्वार प्रायः पक जाती है तब उसे जड़ से काट कर खलियान में ले जाते हैं। खलियान में ज्वार की पूलियों से भुट्टों को काट कर उन पर दायँ चलाते हैं। बाद को हवा में उड़ाकर दाना अलग कर लिया जाता है। किसान लोग ज्वार के दानों को चक्की में पीसकर आटे की रोटी बनाकर खाते हैं। इसीसे कहावत है: —

"जो कोई खाय निषाद के ज्वार, एन बने वह मूढ़ गँवार"

भड़भूँजे इसे भाड़ में भूनकर परमल और खीलें बनाते हैं। ज्वार की कड़बी पशुओं के लिये एक बलिष्ट ख़ुराक है। पशु इसकी कुट्टी को बड़े स्वाद के साथ खाते हैं। राजपूताने में ज्वार की पूलियों को थोड़ी तोड़ मरोड़कर पशुओं के सम्मुख डाल देते हैं। इससे बहुतसा डण्ठल व्यर्थ जाता है। अतएव गँडासी से कुट्टी करके खिलाना अच्छा है। कुट्टी करने की कई प्रकार की मशीनें भी बन गई हैं, जिनका व्यवहार करने से समय की बहुत बचत होती है।

बहुत अर्से तक पानी न मिलने से कभी २ ज्वार कड़वी कड़ई होकर उसमें एक तरह की भँवरी पैदा हो जाती है। अगर चारे के साथ पशु उसको खाले तो पेट फूलकर मर जाता है। बारिश से यह भँवरी नष्ट हो जाती है।

बाजरा।

ज्वार की तरह खरीफ़ का एक बलिष्ठ अन्न है। मारवाड़ में इसे बाजरी कहते हैं। बाजरी का दाना बाजरा से कुछ छोटा और पीलापन लिये होता है। पर खाने में बाजरी बाजरे से मीठी होती है। बाजरे का पेड़ ज्वार के माफ़िक ही लम्बा होता है, पर पत्तियाँ उससे कुछ सकरी और सिरे पर भुट्टे की जगह बाल आती है। ज्वार के पेड़ में एक डंठल होता है और भुट्टे भी एक दो से अधिक नहीं निकलते पर बाजरे का मूँज के माफ़िक भाड़ होता है और बालें चार-छः से लेकर चालीस पचास तक निकलती हैं। बाजरे को युक्तप्रदेश में ज्वार के बाद सावन में बोते हैं, पर मारवाड़ में बरसात का पहिला पानी पड़ते ही प्रायः बो दिया जाता है। इसको पीछे बोना ही ठीक है, क्योंकि पकी फ़सल पर पानी हो जाने से बाल में कँड़वा पड़कर दाना खराब हो जाता है। बाजरे की खेती के लिये विशेष जुताई आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती। दो चार बरसात हो जाने

ये ही रेतीली ज़मीन में यह हो जाता है। संयुक्तप्रदेश में इसे प्रायः जाड़े के मौसम में खाते हैं। पर मारवाड़, गुजरात और दक्षिण में बारह मास ही बाजरा खाया जाता है मूसल से कूट पीट कर बाजरे की खिचड़ी भी बनाई जाती है। इसीसे ऐसी कहावत प्रसिद्ध हुई:—

"कहे बाजरा मैं अलबेला, दो मूसलसों लड़ूँ अकेला।
जो मेरा नाजो खिचड़ी खाय, तुरत बोलता खुश हो जाय॥"

इसकी कड़वी पशु चर लेते हैं या यह छानी छप्पर के काम आती है।

तेरहवीं क्यारी

चाँवल।

यह एक तृण जाति का सर्वोत्तम अन्न है:—

"धान कहे मैं हूँ सुलतान, आधे गये का राखूँ मान।"

चाँवल के ऊपर प्रारम्भ में एक बहुत कड़ी भूसी का छिलका रहता है, इस छिलकायुक्त चाँवल को धान या धन-कर कहते हैं और यह धनकर ही बोया जाता है। चाँवल की शालि, क्वारु, जड़हन और बोरो चार बड़ी किस्में हैं, जो देश-भेद के कारण चैत से आषाढ़ तक बोये जाते हैं और वैशाख से अगहन तक कटते हैं। उत्तरी भारत में अधिकतर अन्न आषाढ़ श्रावण में बोया जाता है और साठ दिन के अन्दर

माद्रों-कुँवार में कट जाता है। इसीलिये इस धान के चाँवलों को साठी के चाँवल कहते हैं। जो चाँवल रोपे से तैयार किये जाते हैं वह अगहन में कटते हैं। इसीलिये इन्हें अगहनी और जाड़े में तैयार होने से जड़हन भी कहते हैं। तमाम बढ़िया चाँवल जड़हन की किस्म से हैं। फिर इन चार किस्मों के भी सैकड़ों, हजारों उपभेद हैं। जैसे बासमती, हंसराज, कमोद, सुखदास, धनियाँ, गोविन्दभोग, कुसुमफूल, छत्रभोग, सीताभोग, हाथीशालि, रामभोग, मोतीचूर, लरेरा, समुद्रफेन, कनकजीरा इत्यादि। यों तो धान की खेती थोड़े नम और नीचे खेतों में भी हो जाती है पर धान के खेत में हाथ दो हाथ पानी अवश्य भरा रहना चाहिये:—
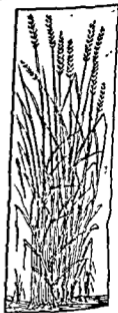
"धान पान पनि यउले, न्यात जान लति यउले।"

मौसिम के पहिले रोपा जाने से क्वार में इन रोपों में से दस २ बीस २ शाखा प्रतिशाखा निकल कर झाड़ बन जाता है। कार्तिक में फूल आकर सिरा बँधता है। उस वक्त, चाँवल के बोझ से सिरे झुक जाते हैं। इसके दस पन्द्रह दिन बाद धान पुष्ट होकर पक जाता है, इसीसे कहा है:—

"धान पान पानी, कातिक सवाद जानी"

पकने पर खेत से काटकर खलियान में ले आते हैं। इसे कहीं तो जड़ से काट लेते हैं और कहीं जल के भीतर के भाग को छोड़कर केवल सिरा मात्र ही—ऊपर से—कपट लेते हैं। फिर उन्हें दस बारह दिन धूप में सुखाकर धनकर निकाल लेते हैं। धान के डण्ठल को पयार कहते हैं। यह बड़ा नरम होता है, इसलिये ग़रीबों का आच्छादन है। चारे के तौर पर पयार पशुओं को भी खिलाया जाता है। चाँवल पीने-पीसने की मिहनत नहीं लेता। थोड़े से गरम पानी में उबाल लेने से भात तैयार हो जाता है:—

"धान बिचारे भल्ले, जो कूटा खाया चल्ले।"

भात बनाने में अधहन का जो गाढ़ा पानी रह जाता है, उसे मांड कहते हैं। चाँवल के आटे के अन्दरसे, बतासफेनी आदि पकवान बनाते हैं। मुरजी धान को भून कर लाई, मुरमुरा, खीलें आदि चबेना तैयार करते हैं। हरे धान को कूट-कर चँवरा बनाया जाता है। काश्मीर और दार्जिलिंग का बासमती चाँवल खाने में बड़ा लज्जतदार होता है। चाँवल बिना रसोई की शोभा ही नहीं, इसीसे कहावत है:—

भात बिना है राँड रसोई, खाँड बिना अनपूती।
बिन पिउ की जिन रोटी खाई, मानो खाई जूती॥

मँडुआ।

बाजरे की क़िस्म का एक छोटा अनाज है। जो भारतवर्ष प्राचीन काल से बोया जाता है। यह कहीं २ जंगलों

में घास फूस की तरह अपने आप उगता है। इसे बरसात में खरीफ की फ़सलों के साथ बोते हैं। कोई २ इसे अकेला भी बोदेते हैं। दो डेढ़ महीने के अन्दर फ़सल तैयार हो जाती है। चाँवल की तरह पानी में उबालकर इसका भात बनाते हैं। आटे की रोटी बनती है। इसी प्रकार भुरट भी एक प्रकार की घास का दाना है। यह बड़ा ताकृतवर होता है, पर इसकी काश्त नहीं होती और जङ्गलों में ही मिलता है।

कँगनी।

यह भी एक प्रकार की घास का अनाज है। इसकी खेती थोड़ी बहुत प्रायः सब ही जगह होती है, क्योंकि चिड़ियों का यह बढ़िया चुग्गा है। इसकी लाल, पीली और सफ़ेद कई जातियाँ होती हैं। दुमट मिट्टी में कँगनी की फ़सल अच्छी होती है। आषाढ़, श्रावण में बोते हैं भादों, क्वाँर में कटकर घर आ जाती है। इसके दाने साफ़, सुन्दर, गोल और चमकदार होते हैं। अधिक वर्षा से इसकी फ़सल को कुछ हानि होती है। पर कटने के पीछे वर्षा रक्खी रहने पर भी इसका कुछ नहीं बिगड़ता। चाँवल की तरह पानी में उबालकर इसका भात बनता है। ग़रीब लोग कँगनी के आटे की रोटी बनाकर खाते हैं।

चैना।

कँगनी की जाति का एक छोटा अन्न है, जो चैत, बैशाख में बोया जाता है और आषाढ़ में कट जाता है। इसके दाने भी छोटे और बड़े सुन्दर होते हैं। इसमें नौ-दस पानी की ज़रूरत होती है। इसीसे कहावत है:—

"चैना जी का लेना, दस बारह पानी देना। बयार चले सो लेना न देना"।

चौहदवीं क्यारी

उड़द ।

दाल की क़िस्म का एक छोटा पौधा है । जिसका सिरा लता की माफ़िक थोड़ा चलता है। एक सींक में बेलपत्र के माफिक तीन २ पत्तियाँ होती हैं । यह ज्वार, बाजरा आदि ख़रीफ़ की दूसरी फ़सलों के साथ प्राय: बोया जाता है। कोई २ स्वतन्त्र तौर पर अकेले उड़द ही बोते हैं। ऐसी दशा में दाना बड़ा और पुष्ट होता है। इसमें कार्तिक में बैंगनी रंग के फूल आकर छोटी २ फलियों के झुम्पे लगते हैं। अगहन में इसकी फलियाँ पक जाती हैं। तब कूट पीट कर उड़द निकाल लेते हैं। यह हरा और काला दो प्रकार का होता है। इसके ऊपर सफ़ेद २ दाग सा होता है, जिसे नाक या टीका कहते हैं, यथा— "उड़द कहे मेरे माथे टीका, मो बिन ब्याह न होवे नीका"। उड़द की दाल बहुत स्वादिष्ट होती है, इसकी पीठी से बड़ा, कचोड़ी, इमरती आदि पकवान तैयार होते हैं। आटे से पापड़ बनते हैं। उड़द का भूसा पशु चर लेते हैं।

मूँग।

उड़द की तरह मूँग का भी पौधा होता है और उसी

रोंसा ।

यह खरीफ़ का दाल की क़िस्म का एक अन्न है। राजपूताने में इसे चँवला कहते हैं। यह छोटा, बड़ा, लाल, सफेद कई प्रकार का होता है, इसकी बेल पास के पौधों में लिपट जाती है। इसीलिये ज्वार, बाजरा, सण आदि के साथ इसे बोते हैं। कच्ची दशा में रोंसा की फलियाँ साग बना कर खाई जाती हैं। पका दाना दाल, बड़ा, भुँजिया, मँगोड़ी आदि बनाने के काम में आता है। लोबिया जिसकी फलियाँ हाथ २ भर लम्बी होती हैं, इसीकी क़िस्म से है। यह गोबर की खाद पड़ी दुमट ज़मीन में अच्छा फलता है और आषाढ़ से लेकर क्वाँर तक बोया जाता है।

कुलथ ।

उड़द की जाति का एक अन्न है, जो बरसात में खरीफ की फ़सलों के साथ बोया जाता है। उड़द के माफ़िक ही इसकी थोड़ीसी बेल चलती है। पर पत्तियाँ पंजे के आकार की मोठ से मिलती जुलती होती हैं। दाने भी उड़द के माफ़िक ही निकलते हैं, जो चिपटे, भूरे, लाल और काले कई रंग के होते हैं। घोड़ों और दूसरे पशुओं का यह मुख्य खाद्य है। ग़रीब लोग इसका चबैना भुनाकर चाबते हैं।

अरहर ।

यह एक प्रकार का मोटा अनाज है। इसे तूर भी कहते हैं की दाल बनाई जाती है। काल-दुकाल में ग़रीब

एक अन्न है जो पूरे दश महीने खेत में रहता है। इसी से कहावत है:—

"सन सूख्यो बीत्यो बनौं, ऊखो लई उखारि।
हरी हरी अरहर अजौं, झूमें खेत बयारि।"

मसूर।

यह भी एक दाल की क़िस्म का अन्न है, जो चिपटा और रंग में मटमैलासा होता है। इसकी दाल बनती है। यह दाल लाल रंग की अरहर की दाल के सदृश होती है। पर उससे कुछ छोटी और पतली रहती है। पकाने पर इसका रंग अरहर की दाल जैसा हो जाता है। यह बड़ी पुष्टिकर होती है। वैद्यक में इसे कफ़, पित्त और ज्वर को दूर करनेवाला माना है। पर हिन्दुओं में बहुतसे लोग मसूर की दाल नहीं खाते। साबित दाने को घी में तलकर दालमोंठ बनाते हैं। इसकी सूखी पत्तियाँ और डण्ठल चारे का काम देते हैं।

——:-०-:——
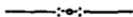
पन्द्रहवीं क्यारी

तिल।

तिलहन की क़िस्म का यह एक पौधा है, जो दो तीन हाथ ऊँचा होता है और तेल के लिये खरीफ़ की फ़सलों के साथ [illegible] है, राजपूताने की रेतीली ज़मीन में हो सकता है

बोते हैं। इसलिये दाना पुष्ट और भरा हुआ होता है। तिलों की खेती के लिये अधिक झंझट की ज़रूरत नहीं होती, खरीफ़ की सब फ़सलों से निपट कर श्रावण में इसे बोते हैं और दो चार पानी में ही हो जाते हैं, कहावत है:—

"तिल न्हाये गाय बजाय घर लाये"

सफ़ेद तिलों को तिल्ली कहते हैं तिल्ली का भी तेल निकाला जाता है और गजक, तिलपट्टी, रेवड़ी तिल्ली लगाकर बनाते हैं। तिलों का तेल मीठा तेल कहलाता है, यह शरीर की मालिश के लिये बड़ा गुणदायक है। इसे जलाते हैं और पकवान आदि बनाने में घी की तरह बर्तते हैं। इसीलिये हमारे देश में मीठे तेल की बहुत खपत है। खली गाय, भैंस आदि पशु खा लेते हैं।

सरसों।

सरसों भारतवर्ष का मुख्य तिलहन है। यह क्वार से कार्तिक तक बोई जाती है। प्रति बीघा आधा सेर बीज पड़ता है। पर हमारे देश के कृषक सरसों अलग खेत में नहीं बोते। जौ, गेहूं, बेझड़ आदि रबी की फ़सलों के साथ चार २ पांच २ हाथ के फ़ासले पर एक २ लाइन सरसों की दे देते हैं। हवा बन्द होने और अधिक सरदी तथा बादल रहने से सरसों के पेड़ों में एक प्रकार का कीड़ा लग जाता है, जिसे चेंपा कहते

हैं। यँधा लगने पर लकड़ी और उपलों की राख जो हर जगह सहज में मिल सकती है छिड़कने से बड़ा लाभ होता है। चारे के लिये इसे घना बोते हैं। पौधे दो डेढ़ हाथ ऊँचा होने पर घने पेड़ों को जड़ से उखाड़ कर कड़यी के साथ कुटी कर पशुओं को चरा लेते हैं। सरसों के नवजात डण्ठल को गड़री कहते हैं। इस गड़री और पत्तों का साग बनता है। पौष, माघ में फूल आते हैं। उस वक्त सारा खेत पीला हो जाता है और देखने में बड़ा सुहावना लगता है। फूल झड़ कर फलियाँ लगती हैं। चैत्र लगते २ यह फलियाँ पक जाती हैं। तब उन्हें जड़ से काट कर खलियान में ले आते हैं और डंडे से ठोक पीटकर सरसों निकाल लेते हैं। अधिक हुई तो बलों की दायँ चलाते हैं। बाद को हवा में उड़ाकर दाने अलग कर लिये जाते हैं। तेली उन्हें घानी में पेरकर तेल निकालते हैं। तेल खाने, जलाने और अचार में डालने आदि के काम आता है। खली को गाय, बैल आदि पशु खा लेते हैं।

अलसी।

यह एक चिपटा पतला बादामी रंग का दाना है और रब्बी की फ़सलों के साथ बोया जाता है। इसका पौधा हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा होता है। फ़सल पर नीले रंग के बहुत सुन्दर फूल आते हैं। फूल झड़कर उनकी जगह छोटी २ घुन्डियाँ सी बँध जाती हैं। इन्हीं घुंडियों से पकने पर अलसी का दाना निकलता है। दानों को घानी में पेरकर तेल निकाला जाता है। अलसी का यह तेल बड़ा कार-आमद होता है। खाये जाने के सिवाय साबुन, वार्निश आदि बनाने में बहुत

हैं। बँधा लगने पर लकड़ी और उपलों की राख जो हर जगह सहज में मिल सकती है छिड़कने से बड़ा लाभ होता है। चारे के लिये इसे घना बोते हैं। पीछे दो डेढ़ हाथ ऊँचा होने पर घने पेड़ों को जड़ से उखाड़ कर कड़वी के साथ कुटी कर पशुओं को चरा लेते हैं। सरसों के नवजात डण्ठल को कड़री कहते हैं। इस कड़री और पत्तों का साग बनता है। पौष, माघ में फूल आते हैं। उस वक्त सारा खेत पीला हो जाता है और देखने में बड़ा सुहावना लगता है। फूल झड़ कर फलियाँ लगती हैं। चैत्र लगते २ यह फलियाँ पक जाती हैं। तब उन्हें जड़ से काट कर खलियान में ले आते हैं और डंडे से ठोक पीटकर सरसों निकाल लेते हैं। अधिक हुई तो बलों की दायँ चलाते हैं। बाद को हवा में उड़ाकर दाने अलग कर लिये जाते हैं। तेली उन्हें घानी में पेरकर तेल निकालते हैं। तेल खाने, जलाने और अचार में डालने आदि के काम आता है। खली को गाय, बैल आदि पशु खा लेते हैं।

अलसी।

यह एक चिपटा पतला बादामी रंग का दाना है और रबी की फ़सलों के साथ बोया जाता है। इसका पौधा हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा होता है। फ़सल पर नीले रंग के बहुत सुन्दर फूल आते हैं। फूल झड़कर उनकी जगह छोटी २ घुन्डियाँ सी बँध जाती हैं। इन्हीं घुंडियों से पकने पर अलसी का दाना निकलता है। दानों को घानी में पेरकर तेल निकाला जाता है। अलसी का यह तेल बड़ा कार-आमद होता है। खाये जाने के सिवाय साबुन, वार्निश आदि बनाने में बहुत

काम आता है। खली को पशु खालेते हैं और उसे पीसकर पुल्टिस की तौर पर फोड़ा, फुन्सियों पर बांधते हैं।

अरंड।

अरंड एक प्रकार का बड़ा पौधा है, इसका पेड़ तीस-चालीस हाथ तक ऊँचा बांस की तरह सीधा देखा गया है और बेरी आदि की तरह इसका झाड़ भी होता है। पत्ते चौड़े चौड़े कँगूरेदार होते हैं। इन्हें कुट्टी के साथ काटकर पशुओं को खिलाते हैं। सिरे पर फलों के गुच्छे लटकते हैं। इन गुच्छों में बड़े २ बीज रहते हैं। जिन्हें अंडी व रेंडी कहते हैं। अंडी का तेल निकाला जाता है। यह तेल खाने के काम में नहीं आता, पर दस्तावर होने से दवा के तौर
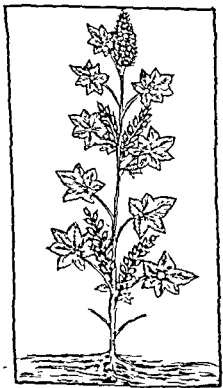
पर व्यवहार होता है। यह गाड़ी ओंघने, कलें साफ़ करने आदि के लिये बड़ा कार-आमद है। इसकी रोशनी बहुत साफ़ होती है। इसीलिये दियों और लैम्पों में इसे जलाते हैं अंडी की खली, आलू, अरवी आदि फ़सलों के लिये बड़ी ज़ोरदार खाद है।

पोस्ता।

इसे पोस्त और खसखस भी कहते हैं। यह एक फूल प्रधान पौधा है, पर अफ़ीम और दाने के लिये इसकी खेती भी होती है। अफ़ीम एक प्राणघातक दवा है। इसीलिये पोस्त की खेती हर कोई नहीं कर सकता। और सरकार की तरफ़ से इसका प्रबन्ध होता है। हमारे इधर राजपूताने में कोटा और मेवाड़ में इसकी काश्त होती है। पोस्त के पौधे की पत्तियाँ कटावदार बड़ी सुन्दर होती हैं। पौधे के बीच से एक डंडीनुमा पतली नाल निकलकर ऊपर को जाती है, जिसके सिरे पर कटोरीनुमा बड़ा सुन्दर फूल लगता है। यह फूल सफ़ेद रंग का होता है। पर बाग़ों में नाना प्रकार के रंगों का पोस्त का पेड़ देखा जाता है, परन्तु उन सब में अफ़ीम नहीं निकलती। फूल झड़ जाने पर तीन चार अंगुल लम्बा डोडा निकलता है। इसी डोडे को चाकू या किसी दूसरी चीज़ से चीर-पोंछकर अफ़ीम निकाला जाता है पहिले यह पतला दूध सा होता है यही दूध तराऊपर जमकर सूखने पर अफ़ीम बन जाता है। बैशाख, ज्येष्ठ में ये डोडे पककर सूख जाते हैं। तब उन्हें तोड़कर बीज निकाल लेते [illegible] ने बीज राई के दानों के समान सफ़ेद, काले कई रंग के [illegible] पोस्त कहलाते हैं। पोस्त का तेल निकाला जाता [illegible] कई तरह से खाते भी हैं।

मूँगफली ।

तिलहन या तेल की फ़सलों में मूँगफली एक प्रसिद्ध फली है। इसे चिनियाँ बादाम भी कहते हैं। भूनकर और कच्चा इसे दोनों दशाओं में मेवा की तरह खाते हैं और तेल भी निकाला जाता है। यह तेल ज़ैतून के तेल की तरह का होता है। घी की तरह खाने जाने के अलावा साबुन वगैरह बनाने में काम आता है। खली को पशुओं की क्या चली ग़रीब मनुष्य तक खा जाते हैं मूँगफली बोने का कोई निश्चित समय नहीं, हर मौसिम में ही इसे बो सकते हैं। पर बरसात का पहिला पानी पड़ते ही इसे बो देना सर्वश्रेष्ठ है। एक बीघा के लिये दस बारह सेर छिला हुआ बीज बहुत है। छीलने में इस बात का ध्यान रहे कि यह बोने के बहुत पहिले छीलकर न रख दी जावे और दानों के ऊपर जो लाल छिलका रहता है, वह टूटने नहीं पावे। क्योंकि बहुत दिन पहिले छील रखने तथा छिलका टूट जाने से दाने उगते नहीं।

इसे दो २ कूँड छोड़कर पंक्तिबद्ध बोते हैं। हल के पीछे एक आदमी बीज लिये रहता है, जो आध २ हाथ के फ़ासले पर एक २ बीज छोड़कर पैर से दबाता चला जाता है। बीज बोने के एक सप्ताह तक अच्छी रखवाली होनी चाहिये क्योंकि बीज और अंकुर दोनों के गिलहरियाँ और कौवे आदि पक्षी शत्रु हैं। मूँगफली का पौधा बहुत ऊँचा नहीं जाता। फ़ीट डेढ़ फ़ीट बढ़कर ज़मीन पर छितरा जाता है। क्वाँर में मटर के फूलों की तरह पीले रंग के फूल आते हैं। फूलों के साथ ही इसके डण्ठलों की गाँठों में से डोरे से निकल-कर ज़मीन में धसने लगते हैं। इस वक्त खेत की मिट्टी कुछ गीली और नरम होनी चाहिये। इन डोरों में ज़मीन के भीतर ही फलियाँ लगती हैं कार्तिक, अगहन तक यह फलियाँ पक जाती हैं और पेड़ पीले पड़कर सूखने लगते हैं। उस वक्त उन्हें कुदार या खुरपी से खोदकर निकाल लेना चाहिये। पीछे धूप में सुखाकर काम में लाओ।

सोलहवीं क्यारी

ज़ीरा।

मसाले की क़िस्म का एक खुशबूदार दाना है। अगर अच्छा बैठगया तो किसान का दरिद्र दूर हो जाता है। इस-लिये किसान को एक दो बीघा ज़ीरा अवश्य बाना चाहिये, ज़ीरे के लिये खूब खाद पाँस डाल कर खेत की मिट्टी को खूब सँभालना चाहिये, जिससे ढेले या तिनके का नाम न रहे।

अगहन, पौष में इसे बोते हैं, बोते ही क्यारियाँ बनाकर पानी देना चाहिये। पर इस तरह बीज एक समान नहीं उगता, इसलिये तीन-चार बार ज़ीरे को पानी में भिगोकर छाया में सुखाते हैं, पीछे राख आदि के साथ मिलाकर छिटकवाँ बो देते हैं, पूर्वी हवा चलने पर ज़ीरे के पौधों में एक प्रकार का चिपचिपा लस पदा हो जाता है, सो देखते रहना चाहिये। अगर लस पैदा हो जावे तो चूल्हे या भट्टी की राख छिड़कने से लाभ होता है। ज़ीरे को अधिक पानी की ज़रूरत नहीं होती। दो तीन पानी में ही पककर घर आजाता है। घास-पात बढ़ने पर एक दो निरान अवश्य करने होते हैं। अच्छी सम्भाल और मौसिम अनुकूल होने पर एक बीघे में तीन-चार मन ज़ीरा हो जाता है और तीस चालीस रुपये मन बिकता है। इस तरह दो-तीन महीने के परिश्रम में ही ज़ीरे की काश्त से किसान के घर एक अच्छी रकम आजाती है।

धनियाँ।

हमारे रोज़मर्रा के खाने का एक मसाला है, इसका पौधा हाथ भर से अधिक ऊँचा नहीं होता। डालियाँ नरम और लचीली होती हैं। पत्ते भी कटवाँ और गोल दो तरह के होते हैं, जिनमें बड़ी अच्छी सुगंध रहती है। इस सुगन्ध के ही कारण तीन चार पत्ते निकलते ही उन्हें खोंट २ कर खाने के काम में लाने लगते हैं, डालियों के सिरे पर छत्ते-नुमा फूल आते हैं। फूल झड़कर उसी माफ़िक धनिये के बीज लगते हैं। इन बीजों को कूट पीस कर साग तरकारी में डालते हैं तथा पंजीरी बनाते हैं, दवा के तौर पर भी धनिये की मींगी का व्यवहार होता है। आसोज कार्तिक इसके बोने का समय है और यदि लगातार

हरा धनियाँ लेना हो तो पन्द्रह २ दिन के अन्तर से भादों के अख़ीर से चैत्र के शुरू तक इसे वो सकते हैं। इसका भाव इसकी पैदावार पर है। जब बहुत उत्पन्न होता है तब सस्ता विकता है। जब थोड़ा निपजता है तब भाव भी तेज़ रहता है। इसीसे कहावत है:—

"कै धना धनों में, कै धना चनों में"

सौंफ़।

मसाले के क़िस्म का ज़ीरे के माफ़िक एक छोटा दाना है। इसमें बड़ी सुन्दर गंध होती है। इसीलिये साग तरकारी में मसाले के तौर पर इसका व्यवहार होता है। ठंढाई और अंचार में भी डालते हैं। अर्क, तेल निकाला जाता है। क्वार-कार्तिक इसके बोने का अच्छा समय है। दोमट ज़मीन और नदी के किनारे के खेतों में फलन अच्छी होती है, पेड़ भी खूब ऊँचा जाता है।

कासनी।

सौंफ़ कासनी का जोड़ा है। इसके कोमल और छोटे पत्तों का साग बनता है। बीज, जड़ें, डण्ठल और पत्ते दवाइयों के काम आते हैं। ठण्ढाई का यह एक मुख्य मसाला है। कहीं कहीं काफ़ी के साथ मिलाकर भी इसे पीते हैं। कासनी का पेड़ हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा होता है, जो देखने में बहुत भला मालूम देता है। डण्ठलों में थोड़ी २ दूर पर गाँठें होती हैं, जिनमें नीले रंग के फूलों के गुच्छे लटकते हैं। क्वार-कार्तिक में बोते हैं।

कलौंजी ।

इसका पौधा डेढ़ हाथ ऊँचा होता है। फूलों के झड़ जाने पर तीन-चार अंगुल लम्बी फलियाँ आती हैं, जिनमें काले २ बीज होते हैं। यही बीज अचार आदि में मसाले के तौर पर बर्ते जाते हैं। इसका तेल भी निकलता है, जो दवाइयों के काम आता है। यह डोमट ज़मीन और नदियों के किनारे के खेतों में अच्छी पैदा होती है। कलौंजी को छिटकवाँ क्वार-कार्तिक में बोते हैं। कहीं २ एक पृथक् क्यारी में पौध तैयार कर इसके पौधे लगाये जाते हैं। दक्षिणी हिन्दुस्तान और नेपाल की तराई में इसकी काश्त बहुत होती है।

अजवाइन ।

यह एक छोटा पौधा है। इसका बीज जिसे अजवाइन कहते हैं मसाले और दवाइयों में काम आता है। इसके दानों में एक तरह की गन्ध होती है, इसलिये सेव, मठरी आदि में उनका व्यवहार होता है। बंगाल इसकी पैदावार का मुख्य क्षेत्र है। इसको क्वार से अगहन तक बोते हैं। अजमोद भी इसी क़िस्म का एक पौधा है, उसके पत्ते सजावट और मसाले के काम में आते हैं।

मिर्च ।

हमारे खाने के मसालों में मिर्च मुख्य मसाला है। यह लाल और काली दो प्रकार की होती है और दोनों की एक दूसरी से भिन्न दो अलग २ जातियाँ हैं।

लाल मिर्च की खेती हर प्रकार की ज़मीन में होती है, पर दुमट ज़मीन में अच्छी फलती है। चैत्र वैशाख में बरसाती और श्रावण भादों में शीतकाल की फ़सल के लिये बीज बोया जाता है। उसकी यह रीति है-पहिले किसी क्यारी में बीज को खूब घना बोकर मिर्च की पौधा तैयार करते हैं। फ़ीट पौन फ़ीट ऊँची हो जाने पर बरसात का

लाल मिर्च का पौधा

पहिला पानी पड़ते ही पौध को क्यारी से उखाड़ कर पहिले से तयार खेत में रोपते हैं। झड़ के वक़्त में मिर्च की पौध अगर रोपी जावे तो जल्द लग जाती है। रोपने के बाद खेत में घास-पात दिखलाई देवे तो एक-दो बार खुरपी से निरान कर देना चाहिये। रोपने के महीना-बीस दिन बाद ही फूल आकर मिर्चें लगने लगती हैं। ये लाल, पीली, नारंगी, गोल, छोटी बड़ी कई प्रकार की होती हैं। पर इनमें लाल रंग की लम्बी मिर्च मुख्य है। पहिला फाल अगर कच्ची हालत में ही तोड़कर बेच लिया जावे, तो उन्हीं पेड़ों में और मिर्चें लगकर दूसरा फाल तैयार हो जाता है। कार्तिक अगहन में मिर्चें पककर लाल हो जाती हैं उस वक़्त उन्हें पेड़ों से तोड़कर बाज़ार में बेच देते हैं। सुखाना हो तो धूप में सुखाकर बोरों आदि में भर रखते हैं।

कालीमिर्च एक लता का फल होता है। इसे सौग

गोल मिर्च भी कहते हैं। इसकी खेती मलाबार, ट्रावन-कोर आदि दक्षिणी हिन्दुस्तान में बहुत होती है। काली मिर्च के पत्ते पीपल के पत्तों के समान बड़े २ होते हैं। इसकी लम्बी २ डंडियों में फलों के झुम्पे लटकते हैं। काली मिर्च का बीज नहीं बोया जाता बल्कि पान की तरह लता के टुकड़े ही आम, कटहल, नारियल आदि किसी वृक्ष के नीचे रोपे जाते हैं, ताकि लताओं के चढ़ने में सुभीता हो। वृक्ष न होने पर लताओं के चढ़ने के लिये टट्टी या मचान बाँधते हैं। तीसरे-चौथे वर्ष इन लताओं में फल लगने लगते हैं। कच्ची [illegible]मा में ये फल लाल रंग के होते हैं। पर पकने और सूखने [illegible]: जैसा कि हम उन्हें देखते हैं काले रंग के हो जाते हैं। [illegible]य कुछ दिन से इसकी खेती सहारनपुर आदि इधर के [illegible]तों में भी होने लगी है।

हल्दी।

यह भी एक प्रसिद्ध मसाला है। मसाले के सिवाय रंग और औषधियों में भी हल्दी का उपयोग होता है। हरी हल्दी को उबालकर अचार डाला जाता है। यह अचार बड़ा गुणकारी और स्वादिष्ट होता है। ज्येष्ठ आषाढ़ में बरसात का पहिला पानी पड़ते ही एक २ फ़ीट ऊँची डोलें बनाकर इसे बोते हैं। प्रत्येक कूँड व डोल का अन्तर फ़ुट सवा फ़ुट रक्खा जाता है। पीछे हाथ सवा हाथ की दूरी पर हाथ से इन्हीं डोलों में हल्दी की हरी गाँठें दबाते चले जाते हैं। एक बीघे के लिये इसकी सौ सवासौ गाँठ काफ़ी होती हैं। गाँठ दबाते समय एक मुट्ठी रेंडी की खली का चूर्ण या पुराने गोबर का खाद डालते जायें तो विशेष उपकार होता है। बरसा में हल्दी

जब बहुत ज़
की जड़ से ह
हो जावेगी।
एक बड़े कढ़ाव व बर्त्तन में उबालकर धूप में सुखाओ। इस प्रकार आठ सात दिन में अच्छी हल्दी तैयार हो जावेगी।

अदरक।

हल्दी की तरह अदरक भी एक मूल पदार्थ है। यह मसाले और ओषधियों में काम आता है। तरकारी, अचार और मुरब्बा भी बनता है। इसीको सुखा कर सोंठ बनाई जाती है। ज्येष्ठ-आषाढ़ में पहिला पानी पड़ते ही छः सात अंगुल गहरी नालियों में इसे बोते हैं। नालियों का अन्तर हाथ-डेढ़ हाथ रक्खा जाता है। अदरक का बीज नहीं होता बल्कि फ़ुट २ भर की दूरी पर निर्दोष गाँठें ही रोपी जाती हैं। सिंचाई आदि का सुपास होने पर इसकी काश्त पौष-माघ में भी की जा सकती है। जब पौधे कुछ बड़े हो जावें तब गुड़ाई-निराई के साथ आस पास की मिट्टी लेकर जड़ों पर चढ़ाते रहो और फ़सल तैयार होने तक दो तीन बार ऐसा ही करो। क्वाँर में नई गाँठें फूटने लगती हैं, जो कार्तिक अगहन से ज़रूरत के माफ़िक खेत से निकाल कर काम में लाई जा सकती हैं। पौष माघ में अधिक शीत से ठिठर कर जब कुल पौधे मर जायँ उस वक़्त सम्पूर्ण अदरक कुदार से खोदकर खेत से उठा लो। अब उसे बाज़ार में बेच डालो, चाहे बालू में दबाकर रख छोड़ो, पर इस बालू को महीने में एक दो बार पानी से तर कर देना ज़रूरी बात है। अदरक की सोंठ बनाना हो तो उसे टाट से रगड़कर छील डालो

फिर पानी से धोकर रोज़ धूप में सुखाओ। रात्रि को इकट्ठा कर के चटाई से ढकदो। जिससे रात की ओस उसको न लगे। ऐसा आठ सात दिन करने से सुन्दर सोंठ तैयार हो जाती है।

सत्रहवीं क्यारी

ईख।

इसको गन्ना और सांठा भी कहते हैं। यह ज्वार की क़िस्म का एक पौधा है। इसकी लम्बाई पांच छः हाथ होती है। इसमें मीठे रस से भरे हुए कई एक पोर होते हैं। हरएक पोर के बाद गांठ होती है। इस गांठ में रस नहीं होता सिर पर नरसल के माफ़िक लम्बे पत्ते रहते हैं। इस पत्ते वाले ऊपर के भाग को "अगोला" कहते हैं। अगोले का रस नीचे की पोरों की अपेक्षा कुछ उतार और खट्टापन होता है। गन्ने को जुदे २ देशों में जुदे २ मौसिमों में बोते हैं। पर हमारे देश भारतवर्ष में फाल्गुन से वैशाख तक बोया जाता है। और कार्तिक-अगहन से कटाई शुरु हो जाती है। ईख का बीज नहीं होता बल्कि टुकड़े २ करके इसटल ही बोये जाते हैं। पर प्रत्येक टुकड़े में एक दो गांठ अवश्य होनी चाहिये। गांठ के पास से ही नये कुल्ले निकलकर पेड़ बढ़ने लगता है। कहीं २ बोने के पहिले

ईख के टुकड़ों को खाद, राख और पानी से युक्त एक गड्ढे में पन्द्रह-बीस दिन रखकर कुल्ले निकलने पर बोते हैं। इस तरकीब से पौधा जल्द ऊपर आ जाता है और सिंचाई की विशेष आवश्यकता नहीं होती। जब तक वर्षा का मौसम न आवे महीने में एक दो सिंचाई काफ़ी है। गन्ने के साथ ककड़ी, खरबूज़ा आदि की फ़सल लेनी हो तो कुछ अधिक सिंचाई की ज़रूरत होती है। खाद-पाँस दिये बिना ईख का पौधा ठीक २ बढ़ता नहीं, सो इसके लिये खाद पाँस युक्त खूब ज़ोरदार खेत होना चाहिये। कहीं २ गुड़ाई के समय रेंडी की खली का चूरा और पुराने गोबर की खाद खड़ी फ़सल में भी देते हैं।

-ईख के कई भेद हैं, उनमें ऊख, गन्ना और पौंडा मुख्य हैं। ऊख का डंठल लाल, पीला और पतला होता है। इसके छीलने से छोई जल्द नहीं उपटती। धौला, मतना, सरौती, कुसवार, लखड़ा इसके उपभेद हैं। गन्ना ऊख से लम्बा, मोटा और मुलायम होता है। इसीलिये दाँत से छील-कर खाने वाले इसे अधिक पसन्द करते हैं। अँगोला, पँसाई, बड़ोखा, गोड़ारा इसके उपभेद हैं। पौंडा गन्ना विदेशी है। मोरीसस, सिंघापुर आदि से इसकी भिन्न२ जातियाँ यहाँ आई हैं। इसका डण्ठल लाल, सफ़ेद, हरा और खूब मोटा और रस से भरा हुआ होता है। दाँत से छीलने से छोई जल्द उपट जाती है। इसलिये चूसने वाले गर्व से इसे अधिक पसन्द करते हैं। यह छीलकर खाने के काम में ही प्रायः आ जाता है। कहीं २ इसके रस से गुड़-शक्कर भी बनाते हैं। हमारे देश में गन्ने का रस पहिले लकड़ी और पत्थर के कोल्हू द्वारा निकाला जाता था, पर अब बेलन वाला कोल्हू

जिसकी तसवीर नीचे दी है, अधिक उपयुक्त साबित हुआ है। क्योंकि इसके ज़रिये एक तो रस बहुत निकलता है। दूसरे गन्ने के टुकड़े नहीं काटने पड़ते। तीसरे रस खट्टा नहीं होता। बहुत

बरसों तक एक ही जगह का बीज बोने से ईख की नस्ल बिगड़ जाती है। इसलिये दस पांच बरस बाद इसका बीज बदल देना चाहिये। ईख एक बड़ी क़ीमती फ़सल है। इसके रस से गुड़, शक्कर, राब और सिरका तयार होता है। रस में चावलों को पका कर रसियाउर बनाते हैं तथा शौक़ के तौर पर इसको पीते भी हैं।

तमाखू।

इसका पौधा पहिले सिर्फ़ अमरीका में पैदा होता था। इसको सर वाल्टररेले रानी एलिज़बेथ के समय में अमेरिका से इङ्गलिस्तान में लाये थे। पीछे धीरे धीरे इसका प्रचार पृथ्वी परके सारे देशों में होगया। अकबर बादशाह के समय में सर टाम्सरो इसे हिन्दुस्तान में लाये थे। इस वक्त सौ में नब्बे आदमी इसे खाते, पीते और सूँघते हैं। तमाखू का पौधा तीन चार फ़ीट ऊँचा होता है। पत्ते भी लम्बे और नशीले होते हैं। इसीलिये उन्हें पशु नहीं चरते।

यों तो तमाखू हर प्रकार की ज़मीन में पैदा हो जाता है, पर खाद-पाँसयुक्त ज़मीन में अच्छी निपजती है। आषाढ़ श्रावण में बीज पौध के लिये बोया जाता है। एक बीघे के लिये तोला दो तोला बीज काफ़ी होता है। पौध तैयार

करने का यह रीति है कि किसी छायायुक्त ज़मीन
खूब खाद-पांस मिलाकर हाथ से बीज को बहुत घ
छिटकवाँ बो देते हैं। तमाखू का बीज बहुत छोटा हो
है, इससे उसपर अधिक मिट्टी न डालकर पत्ती आ
का मामूली सा चूरा छिड़क देते हैं। जब पौध पांच
इंच ऊँची हो जाती है, तब उसे खुरपी आदि के द्वारा ब
से उठाकर पहिले से तैयार किये हुए खेत में दो दो, तीन ती
फ़ीट की दूरी पर रोपते हैं। रोपने का समय अख़ीर भा
से अख़ीर अगहन तक का है। रोपने के बाद ही थोड़ा पा
देना चाहिये, ताकि पेड़ जड़ पकड़लें। बाद को आवश्यकत
नुसार सिंचाई करते रहो। तमाखू की फ़सल को खारी पा
अच्छा माफ़िक है। इसलिये खारी कुओं पर ही तमाखू
काश्त करनी चाहिये। पौध रोपी जाने के बाद जब पौ
हाथ डेढ़ हाथ के हो जावें, तब सारे खेत को गोड़कर पौध
की जड़ में मिट्टी थोप दो, ताकि हवा से ज़मीन पर गि
नहीं। इसी समय नीचे की ख़राब पत्तियाँ निकालकर पौधे
का अग्रभाग तेज़ छुरी से काट डालो। इस तरकीब से जल
फूल न आकर पौधा अच्छा फैलता है और रस ऊपर
चढ़ने से बीच की पत्तियाँ मोटी पड़ जाती हैं। जब
पत्ते पीले रंग के होकर उन पर चित्तियाँसी पड़ने लगें तब
समझलो कि वह पक गये। उस वक्त उन्हें पेड़ों से अलग
करलो। या जड़ से ही पौधे काट डालो इसके बाद ये पत्ते
कुछ दिन धूप में सुखाये जाते हैं। पीछे गुड़ और खार के
पानी में डुबोकर उनकी तह जमाकर गड्डियाँ जमाली जाती
हैं। कहीं कहीं उन्हें कुछ दिन खार में दबाकर रस्सी की
नाईं बटकर इंडुरीसी बना लेते हैं।

पीने वाले इसी तमाखू को बाज़ार से लाकर गुड़ के साथ कूट पीट हुक्का या चिलम के द्वारा इसके धुएँ को पीते हैं। कोई बीड़ी, सिगार, चुरट के रूप में इसके धुएँ का सेवन करते हैं। कोई तमाखू के सूखे पत्तों को चूना के साथ चूर कर खाते हैं। सूँघनेवाले इसके पत्तों को मदा के माफ़िक बारीक करके सूँघते हैं। इसे सुरती और हुलास कहते हैं। बनारस और जोधपुर की सुरती प्रसिद्ध है। बहुतसे शौकीन इसे पान में रखकर खाते हैं। कटहल, बेर आदि के चूरे के साथ गाड़ रखकर तमाखू का खमीरा बनाते हैं। यह पीने में खुश-बूदार होता है।

अठारहवीं क्यारी

कपास।

यह एक रेशेदार पौधा है, जिसके ढोंढसे रुई निकलती है। इसके कई भेद हैं। किसी के पेड़ ऊँचे-लम्बे किसी के छोटे-पतले और किसी का झाड़ होता है। उनके पत्ते, फूल और ढोंढ भी भिन्न २ प्रकार के होते हैं। किसी के पौधे सालों साल बोये जाते हैं, किसी के दो तीन वर्ष खेत में बने रहते हैं। रुई भी सफ़ेद, पीली, मोटी, पतली, नरम, मुलायम, लम्बे धागे या द के लिहाज़ से कई प्रकार की होती है। अमेरिका और मिश्र की रुई अपने नरम और लम्बे धागे के कारण संसार में सर्वोत्तम मानी जाती है। हमारे देश में हींगनघाट और भड़ौंच की रुई प्रथम श्रेणी की होती है।

कपास के बीच में जो बीज रहते हैं उन्हें कपासिया,विनोला और काकड़ा कहते हैं खेत में यही बोये जाते हैं। जो बीज ज्येष्ठ में बोए जाते हैं उसकी फ़सल को जेठू वण और जो बीज आपाढ़ में डाले जाते हैं उसे आपाढ़ू वण कहते हैं। कहीं २ के किसान चार-पाँच बार खेत को जोत कर बीज बोते हैं। कहीं एक दो बार जोतकर ही बीज बखेर देते हैं, पर खाद-पाँस खेत में भरपूर होना चाहिये। कपास के पेड़ उग आने के बाद पन्द्रह २ बीस २ दिन के अन्तर से चार-पांच बार निराई करते हैं। इससे पेड़ों की जड़ों को भरपूर ख़ुराक और रोशनी पहुँचती रहने से फ़सल खूब जोर करती है। क्वाँर-कार्तिक में फूल लगकर ढेंढ आते हैं। जेठू वण में तो ये ढेंढ क्वाँर में ही फट कर कपास बाहर निकलनी शुरू हो जाती है, पर आपाढ़ू में कुछ देर बाद ढेंढ खिलते हैं।

जब फूले हुए कपास से खेत भर जाता है तब उसे ढेंढों से चुनकर घर ले आते हैं। फिर आठवें-दसवें दिन बारी २ से यह चुनाई माह-फाल्गुन तक होती रहती है। कहीं २ चार पाँच चुनाई ही करते हैं, पर इसमें चोरी चकारी

के सिवाय बहुतसा कपास ज़मीन पर पड़कर खराब हो जाता है। पीछे कपास को रहँटियों (चरखियों) में ओट (लोढ़) कर रुई को बिनौलों से अलग कर लेते हैं। अब स्थान २ पर एंजिन और भाप के बल चलने वाली चरखियाँ लग जाने से हाथ की रहँटियों का रिवाज प्रायः उठसा गया है। रुई का हाथ के चरखों और कलों द्वारा सूत काता जाकर भाँति २ के कपड़े बनते हैं। बिनौले गाय-भैंस के बाँटे (रातब) के काम आते हैं और कहीं २ बिनौले का तेल भी निकाला जाता है।

सन।

इसकी काश्त भी रेशे के लिये होती है। यह सब क़िस्म की ज़मीन में होता है। पर चिकनी मटि और दुमट ज़मीन में अच्छा निपजता है। कहीं वर्षा के शुरू में और कहीं वर्षा के अन्त में बोते हैं। पर बरसात के शुरू में ही बोना अच्छाहै। इसका फ़ी बीघा चार-पाँच सेर बीज पड़ता है। क्योंकि सन घना बोया जाता है। चार-पाँच महीने में जब देखो कि सन फूलने पर आ गया तो इसे जड़ से काटकर किसी पोखर या गढ़े में चार छः दिन सड़ाते हैं। पीछे कूट पीटकर सन निकाल लेते हैं, पर सिरा तोड़कर जो रेशा हाथ से उचाटकर निकाला जाता है वह कुछ अच्छा होता है। सन में मूँगफली के माफ़िक मोटी फलियाँ आती हैं, जिन्हें एनधिद्दिया कहते हैं। इन फलियों में अनेक काले काले बीज होते हैं जो हिलाने से बजते हैं। कहीं कहीं इसे हरीखाद के लिये बोते हैं और हाथ: दो हाथ ऊँचा आने पर खड़ा ही खेत में जोत देते हैं। सन के सूत से रस्सा, रस्सी, बर्त (लाव), सुतली, टाट, बोरे आदि

अनेक चीज़ें तैयार होती हैं। गाड़ी ओंगने में भी सन का प्रयोग होता है।

पटसन।

इसे पाट और पटुआ भी कहते हैं। इसका रेशा सन के रेशे से साफ़ और मुलायम होता है। इसीलिये टाट, थोरे, रस्से, रस्सी आदि के सिवाय इसके सूत से पहिनने ओढ़ने के कपड़े और गलीचे आदि तैयार होते हैं, जो देखने में रेशम के समान चमकदार और मज़बूत होते हैं। पाट के कई भेद हैं, पर उनमें नरछा और बनपाट मुख्य हैं। दुमट, तालाबों और नदियों के किनारे की नीची ज़मीन में यह अच्छा होता है। इसी कारण बंगाल में पाट की काश्त बहुत होती है। फाल्गुन से लेकर ज्येष्ठ-आषाढ़ तक पाट बोया जाता है। इसको कहीं हाथ से छिटकवाँ बोते हैं और कहीं बिहही द्वारा बोया जाता है। पर घना बोया जाना ज़रूरी है इससे पेड़ लम्बे और सीधे जाने से रेशा अच्छा निकलता है। एक बीघे में चार पाँच सेर बीज पड़ता है। बीज बोने के चार पाँच महीने के अन्दर फल फूल आते हैं। उस वक़्त इसे काट लेना चाहिये, नहीं तो रेशा कड़ा हो जाता है। रेशा निकालने की यह रीति है कि दो चार दिन पौधों को धूप में रखकर उनकी पूलियाँ बाँध आठ-सात दिन तक किसी ताल-तलैया के पानी में सड़ाते हैं। सड़ने पर रेशे सहज में निकल आते हैं, फिर उन्हें धो-पछाड़ साफ़ कर लेते हैं। मंढेली जिसे दक्षिणी अम्बावाड़ी भी कहते हैं, इसी क़िस्म का पौधा है। खटास रहने से इसके पत्तों की कढ़ी और साग बनाते हैं।

उन्नीसवीं क्यारी

केसर ।

केसर सिवाय काश्मीर के और कहीं नहीं होती। इसका बीज नहीं होता बल्कि लहसन के मानिन्द जड़ होती है और वही रोपीजाती है। बरसात के बाद क्वांर-कातिक रोपने का अच्छा समय है। पेड़ उगने पर कुसुम जैसे फूल आते हैं। इन फूलों में सुगन्ध इतनी होती है कि तमाम मैदान महक उठता है। केसर के फूलों में सभी पेड़ केसर का गुण नहीं रखते। इस-लिये यहां के लोग उन्हें चुन चुनकर सुखाते हैं। केसर में बहुत अच्छा रंग और गन्ध रहने से उसे मिठाइयों में डालते हैं। सुगन्ध के लिये चन्दन की तरह घिसकर देव-मूर्तियों पर चढ़ाते हैं। इसको माथे पर भी लगाते हैं। केसरिया रंग सर्वत्र प्रसिद्ध ही है।

नील ।

एक प्रकार का छोटा पौधा है, इसकी पत्तियों से रंग निकाला जाता है। यह पत्तियां चमेली की पत्तियों की तरह टहनी के दोनों ओर रहती हैं। प्रत्येक टहनी के सिरे पर फूल आकर फलियों के गुच्छे लटकते हैं। जिनमें सरसों के दानों के समान छोटा बीज होता है। यही बीज नहर या कुए के पानी से खेत में पलाव कर ज्येष्ठ में बोया जाता है। जेठ में बोने से नील कटने पर फिर उसी खेत में जौ, गेहूँ की फ़सल हो जाती है। बैसाख-ज्येष्ठ में बोने से भादों के शुरू में ही फूल आने के पहिले नील के पौधे खेतों से काट लिये जाते हैं।

यह कटा हुआ लाँक, तोल पर नील की कोठी वाले या दूसरे चहबच्चे चलाने वाले खरीद लेते हैं। कभी कभी खड़े के खड़े खेत ही बेच दिये जाते हैं। कोठियों के मालिक नील को खेतों से काटकर बैलगाड़ियों द्वारा कोठी में लाते हैं, वहाँ उन्हें बड़े बड़े चहबच्चों में दाबकर पानी से डुबा देते हैं। एक दिन रात में पत्तियों का रँग पानी में आजाता है। तब इसी पानी को नीचे के चहबच्चे में गिराकर दोनों हाथों से बिलोने से हवा में के कई तत्त्व उसमें मिलकर नील का पक्का रँग तैयार हो जाता है। दूसरे दिन पानी को निथार कर तली में से नील का गाढा निकाल लेते हैं। इस गाढे की बट्टियाँ तैयार होकर रँगने के काम आती हैं और बड़े दामों पर बिकती हैं।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय में जगह जगह नील की कोठियाँ बनकर इसके व्यापार की बड़ी उन्नति हुई। परन्तु जर्मनी का नक़ली नील का रँग चलने पर यहाँ के नील के कारोबार को बड़ा धक्का पहुँचा और धीरे २ तमाम कोठियाँ उठ गईं। अब सिर्फ़ बंगाल और बिहार में निलहे साहब लोगों की कुछ कोठियाँ रह गई हैं। अगर नील के खेत में रबी की दूसरी फ़सल नहीं बोई जावे, तो एक दो कटाई और होकर अन्त को उन्हीं पौधों से बीज और मिल जाता है।

कुसुम

इसे बर्रे भी कहते हैं, नील की तरह इसकी खेती भी पहले बहुत होती थी, परन्तु जर्मनी के नक़ली रँग चलने से इसकी खेती भी पेंदे बैठ गई, रबी की फ़सलों के साथ बर्रे की

भी बोते हैं। माघ से चैत्र तक फूल आते हैं। फूलों में रँग भरने पर सावधानी के साथ पौंड़ी के सिरे पर से फूलों के लच्छे उतार लिये जाते हैं और पौंड़ी को बीज के लिये वैसा ही छोड़ देते हैं। पकने पर डोडों को कूट पीट कर के दाने निकाल लेते हैं। इन दानों का तेल निकाला जाता है, जो घी और मीठे तेल की तरह खाने के काम में आता है यह वार्निश में भी काम में आता है। कर्र के उबले हुए तेल में ठंडा पानी देने से एक प्रकार का

सरेस बन जाती है, जो टूटा हुआ शीशा आदि जोड़ने के काम आती है। खली को पशु चर लेते हैं।

वीसवीं क्यारी

ल्यूसर्न ।

इसका देशी नाम रज़का है। यह घोड़ों की चरी के लिये बोया जाता है। दूसरे पशु भी इसको बड़े स्वाद से खाते हैं। इसका पौधा दो से चार फ़ीट तक ऊँचा होता है। जिसमें जड़ के पास से ही बहुतसी टहनियाँ फूट निकलती हैं, इस के पत्ते स्याह रँग के मेथा के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं। और दानों की बनावट राई की तरह पर होती है। ल्यूसर्न

कई प्रकार का होता है। जैसे काबुली, मुल्तानी, ईरानी और देशी। इसके बोने का अच्छा समय क्वार-कार्तिक और उधर फाल्गुन से चैत्र तक का है। मतलब यह है कि इसके बोने के समय गर्मी, सर्दी अधिक नहीं होनी चाहिये। ल्यूसर्न की फ़सल कई वर्ष तक खेत में रहती है, सो इसकी खेती के लिये खूब खाद, पाँस युक्त ताक़तवर ज़मीन होनी चाहिये। बीघा पीछे पचीस तीस गाड़ी मेंगनी का पुराना खाद देते हैं। मेंगनी का खाद न मिलने पर घोड़ों की लीद और पशुओं के गोबर का सड़ा हुआ खाद देते हैं।

इसके बोने का तरीक़ा यह है कि दो२फ़ीट के अन्तर पर डौलें बना२कर डौलों के ऊपर एक खूंटी के ज़रिये दो अँगुल गहरी लकीरसी खींच कर बीज के दो २ चार २ दाने डालते चले जाते हैं। जिनसे इतनी मिहनत नहीं होती वह कूड़ों में विहटी के द्वारा बीज बोते हैं। ल्यूसर्न बोने के पीछे उसी दिन पानी देना चाहिये। फिर महीने में आवश्यकतानुसार तीनचार सिंचाई तो अवश्य ही करो। पर क्यारियों को पानी से इतना न भरो कि डण्ठल डूब जावे। बरसात में क्यारियों में बहुत पानी भर जावे तो उसे निकाल दो नहीं तो जड़ें सड़ जावेंगी। पत्तियों में लट या कीड़ा लगता देखो तो सूखी राख छिड़को। फ़ीट दो फ़ीट ऊँचा होने पर एक तरफ़ से काट कर इसकी चरी पशुओं को खिलाना शुरू कर देना चाहिये। जब तक पूरा खेत कटेगा। पहिली तरफ़ से फिर कटने योग्य हो जावेगा। इस तरह साल में आठ दस बार कटाई होकर बीघे पीछे पाँचसौ छः सौ मन रज़का मिल जावेगा, परन्तु प्रत्येक ऋतु में बराबर नहीं उतरता, कार से चैत्र तक अच्छी पैदावार होती है।

पैदावार कम होने पर रज़का की डोलों के बीच हलका हल चलाकर राख मिली मैंगनी की खाद देनी चाहिये। हल चलाने का सुपास न हो तो हाथ से गोड़कर खाद का उपयोग करो। यह भी नहीं हो तो कुएँ के पारछे (टाँके) के नीचे एक गड्ढा खोद उसमें खाद भर दो और उसे लकड़ी के एक डंडे से चलाते रहो तो पानी के ज़रिये खाद का सार भाग खेत में पहुँच जावेगा। जब बीज लेना हो तब फाल्गुन में काटकर छोड़ दो तो फलियाँ लगकर बैशाख में बीज आ जावेगा। एक बीघे में दो-तीन मन बीज निकलता है और दो तीन रुपये मन बिकता है। बीज के लिये प्रति बीघा चार सेर रज़का बहुत है। कोई २ रज़के के साथ एक चौथाई मेथा मिलाकर बोते हैं, पर यह तरीक़ा अच्छा नहीं है क्योंकि मथा कटने पर रज़का छिदरा पड़ जाता है। किसान को अपने पशुओं के लिये एक-दो बीघा रज़का अवश्य बोना चाहिये रज़के की हरी चरी चरकर पशु खूब पुष्ट होते हैं। राँधकर खिलाना और भी अच्छा है।

ग्वार।

इसे दरारी भी कहते हैं। एक प्रकार का मोटा अन्न है। इसे मनुष्य नहीं खाते पर पशुओं के लिये बड़ी पुष्ट खुराक है। खरीफ़ की फ़सलों के साथ बरसात में ग्वार बोई जाती है। चारे के लिये कहीं २ इसे अलग भी बोते हैं। अगहन-पौष में पककर यह तैयार हो जाती है। चरी चराना हो तो फली आने के पेश्तर काटकर चराई जा सकती है। मारवाड़ की ग्वार की फलियाँ बहुत नरम और बिना रोयें की होती हैं। इसीलिये वहाँ उनका साग बनाकर खाते हैं। इनको धूप में सुखाकर काचरी की तरह घी में तलते हैं।

खेती-बाड़ी

दूसरा भाग

बाड़ी

इक्कीसवीं क्यारी

साग-पात और ज़मीन पर फैलकर बढ़ने वाले फल-फूल आदि के मूल से ही अनेक भक्षक होते हैं, इसलिये उनकी रक्षा के लिये कृषक लोग ऐसे स्थानों और खेतों को एक कच्ची-पक्की छोटी दीवार तार के खम्भों या काँटों आदि से घेर देते हैं, जिसे बाड़ कहते हैं। मालूम होता है कि इस बाड़ को लेकर ही साग-सब्ज़ी का नाम बाड़ी पड़ गया है। वैसे तो बाड़ी छोटी बगीची को कहते हैं।

सब प्रकार के साग-पात, कन्द, मूल, फल-फली जो अधिक ऊँचे न जाकर ज़मीन पर या उसके क़रीब में लगते हैं इस बाड़ी के अन्तर्गत हैं। बाड़ी का व्यापार अधिकांश मालों, काछी और कुँजड़ों के हाथ में है। यह बड़ा अच्छा रोज़गार है, क्योंकि बाड़ी बोने के महीने सवा महीने बाद ही रोज़-मर्रा कुछ न कुछ आमद होने लगती है। खेतों की फ़सलों की पैदावार तो कहीं साल-छः महीना बाद बड़ी मुश्किल से

हाथ लगती है, तिस पर भी उस वक्त पोद्दार, ज़मींदार आदि अनेक भूत उसे झपटने को आ कूदते हैं। इसलिये किसान को अपने घर का नित्यप्रति का काम चलाने के लिये थोड़ा-थोड़ा थोड़ा बहुत अवश्य बोना चाहिये।

इन साग-सब्ज़ियों की कई क़िस्में हैं-किसी के पत्ते काम में आते हैं तो किसी के फल और फलियाँ खाई जाती हैं। किसी का सब्ज़ बीज छिमका जाता है तो किसी की जड़ें खाई जाती हैं। किसी का डण्ठल उपयुक्त समझा जाता है तो किसी का फूल ही उत्तम बनता है और किसी के फल, फूल, पत्ते, डण्ठल आदि सब अङ्ग काम में आते हैं। प्राय. तरकारियाँ अपनी अधकची अवस्था में ही काम आती हैं। बड़ी होने पर कड़ी हो जाती हैं, तब उन्हें या तो किसान ही पसन्द करते हैं या पशु खाते हैं। कोंहड़ा, खरबूज़ा, तरबूज़ आदि फल और आलू, अरवी, रतालू आदि कुछ कन्द पदार्थ पकने पर भी खाये जाते हैं। इनमें किसी का पेड़ चलता है तो कोई ज़मीन पर घास की माफ़िक छितरा जाती हैं। किसी की वेल चलकर ऊँचे २ पेड़ों की चोटियों तक जा पहुँचती है या ज़मीन पर रस्सी की तरह पड़ी बढ़ा करती हैं।

बाईसवीं क्यारी

मेंथी।

इसके पत्तों और दाने का साग बनता है। अचार और तरकारियों में दानामेथी मसाले की तौर पर काम आती है। इसके पत्तों में बड़ी अच्छी गन्ध होती है, जो पत्तों के सूखने

पर भी नहीं जाती। इसीलिये मेथी के पत्तों को लोग फ़सल पर सुखा कर रख छोड़ते हैं। मेथी बोने का समय भादों से कार्तिक तक है। यह दस-पाँच पत्ते निकलते ही खोंटी वा काटी जा सकती है और क्रमशः फाल्गुन, चैत्र तक बराबर कटती रहती है। इसको बीच में कभी २ गोड़ दिया जाय तो अच्छा है। सूखे मौसिम में आठवें दसवें दिन सींचते हैं। बड़ी पत्ती का मेथा कहलाता है, मेथा खाने में कुछ कड़ुआ होता है पर पशु उसे बड़े स्वाद से खाते हैं।

पालक।

मेथी की तरह पालक के पत्तों का भी साग बनता है। इसको फ़ुट २ भर के फ़ासले पर कूड़ें बना कर भादों से कार्तिक तक बोते हैं। बोने के पहिले बीज को पानी में अच्छी तरह भिगो कर एक दो दिन घास-फूस में दबा कर रक्खा जावे, तो अच्छा उगता है। यह सब प्रकार की ज़मीन में बोया जा सकता है। पर जहाँ दिन में छाया रहे, वह ज़मीन इसके लिये अधिक उपयुक्त है। पाँच-छः हफ़्ते में यह खाने लायक़ होजाता है, तब जड़ से दो इंच रख कर ऊपर से काट कर खाते हैं। पत्ते इधर तोड़िये उधर नये निकल आते हैं। क्रमशः काटने से माह-फाल्गुन तक यह साग चलता है। पीछे बीज के लिये छोड़ देते हैं। चतुर किसान दूसरे साग की क्यारियों की छुटी हुई जगह में भी इसे छींट देते हैं। सोआ और मूली के पत्तों के साथ मिला कर भी यह वर्त्ता जाता है।

सोआ।

इसके पत्तों और डण्ठलों का साग होता है। बीज ओषधियों में काम आते हैं। इसके पत्तों में सुगन्ध होती है।

इसीलिये पालक, आलू आदि के साथ मिलाकर भी इसका साग बनाते हैं। क्वांर से कार्तिक तक फ़ुट २ भर के फ़ासिले पर पंक्तिबद्ध कूड़ों में इसे बोते हैं। कोई २ छिटकवाँ भी बो देते हैं, बोने के चार पाँच हफ़्ते बाद खोंटने और काटने के योग्य होजाता है, क्रमशः काटने से माह-फाल्गुन तक चलता है। पीछे से इसको बीज के लिये छोड़ देते हैं।

कुलफ़ा ।

यह माह-फाल्गुन से ज्येष्ठ तक बोया जाता है। इसको बोने में क्यारियों को पहिले भली प्रकार तैयार करते हैं, फिर हाथ से छिटकवाँ बोते हैं। बीज छिटकने के बाद ऊपर थोड़ी सी बारीक मिट्टी व पत्तियों का चूरा हाथ से मलकर डाल देते हैं क्योंकि इसका बीज बहुत छोटा होता है ज़मीन के अन्दर औंडा चला जाने से अंकुर निकलने में बड़ी कठिनता होती है। उगने के बाद समय २ पर पानी देते हैं। यह महीना सवा महीना में खाने योग्य होजाता है अगर देर तक खाना चाहें तो पन्द्रह २ दिन के अन्तर से इसे बोते रहना चाहिये।

चौलाई ।

इसकी काश्त बहुत कम होती है। यह बरसात के दिनों में जंगली हालत में हर जगह पाई जाती है। गर्मी की तरकारी के लिये राजपूताने में ज़रूरत माफ़िक माह से चैत तक इसे बोते हैं। बीज बोकर दूसरे तीसरे दिन पानी देना चाहिये, क्योंकि पूरी नमी के बिना बीज उगता नहीं, महीना सवा महीना में साग तैयार होजाता है, तब इसे ज़रूरत के माफ़िक

जड़ से दो-तीन इंच छोड़कर ऊपर से काट लेना चाहिये आठ-दस दिन के अन्दर साग बढ़कर फिर काटने के लायक होजावेगा। इस प्रकार बारी २ से काटने पर यह तीन चार महीना चलता है।

बथुआ।

गेहूँ, जौ आदि रबी की फ़सलों के साथ प्रायः यह अपने आप ही पैदा होता है। वैद्यक-मत से यह बड़ा गुणकारी साग है। माह-फाल्गुन से लेकर चैत्र तक यह साग के अभाव में बोया भी जाता है। बथुआ की कढ़ी और रायता अच्छा बनता है।

तेईसवीं क्यारी

सलाद।

इसका देशी नाम काहू है। क्वाँर-कार्तिक के समय बीच में एक २ फ़ुट छोड़ कर इसे बोते हैं। पर अच्छी सलाद रोपने से ही तैयार होती है। रोपने के लिये पौध को किसी टब या पेटी में तैयार करते हैं और इनके न होने पर कहीं छाया में फ़ुट भर ऊँची खाद-पात युक्त मिट्टी की चबूतरेनुमा क्यारी बना कर हाथ से बहुत घना बीज छींट देते हैं। जब तक रोपने के लिये पौध न उखाड़ी जावे तब तक बराबर दूसरे-तीसरे दिन झारे से पानी देकर क्यारी की मिट्टी नम रक्खी जाती है। तीन चार इंच ऊँची होने पर पौध को क्यारी से उखाड़ कर फ़ासले के हिसाब अन्तर पर पंक्तिबद्ध खेत में रोपते हैं। सलाद की पौध

के फ़ीट पीन फ़ीट के अन्तर पर रोपो और जबतक पेड़ जड़ न पकड़लें बराबर थोड़ा पानी दो, धूप और हवा लगने से सलाड की पत्तियां कड़ी और हरी होजाती हैं। इसलिये उन्हें आपस में बांधकर घास-फूस से ढक दो, तो सलाड सफ़ेद और खाने में बड़ा लज़्ज़तदार होगा। अंग्रेज़ लोग सलाड की पत्तियों को चाकू से काटकर नमक मिर्च लगा चना-मटर के साग की तरह कच्चा ही खाते हैं। इसके पत्तों और डण्ठल का साग भी ज़रा सी आँच देने में बन जाता है। डण्ठल में फूल लग कर बीज आते हैं, यह बीज दवाइयों में काम आते हैं और उनका तेल भी निकाला जाता है।

गोभी।

यह एक प्रसिद्ध तरकारी है, इसकी खेती पहिले यहां नहीं होती थी, अंग्रेज़ों के साथ गोभी भी हमारे देश में आई। फूल गोभी, गाछ गोभी, बंद गोभी, गाँठ गोभी इसके कई भेद हैं। पर गोभी कहने से फूल-गोभी ही समझी जाती है। ज्येष्ठ-आषाढ़ से लगाकर भादों-क्वाँर तक इसे बोते हैं। ज्येष्ठ की बोई गोभी क्वाँर-कार्तिक तक तैयार हो जाती है। गोभी को एक दम नहीं बोना चाहिये, बल्कि पन्द्रह २ दिन के अन्तर से बोने से यह जाड़े भर फूल देती रहती है। इस तरकीब से फूल भी नहीं बिगड़ते और दाम भी अच्छा मिलता है। गोभी की पौध रोपी जाती है, पौध तैयार करने

का वही तरीक़ा है। जो सलाड का ऊपर बताया है। पर जहाँ तक सम्भव हो पौध टीन के टब या काठ की पेटियों में बोई जावे, क्योंकि उन्हें धूप, वर्षा आदि में एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर रख सकते हैं। दूसरे गोभी का बीज बहुत छोटा होता है, इसलिये उसको मिट्टी में अधिक न दाब कर ऊपर से सिर्फ़ पत्तियों का चूरा मात्र छिड़क कर उसे ढक देना चाहिये। गोभी के दो-तीन चौके बदले जाते हैं। चार-पाँच पत्ते निकलने पर उन्हें टब या पेटी से उठा कर दो तीन इंच की दूरी पर एक दूसरी क्यारी में लगाते हैं। लगाते ही थोड़ा पानी देना चाहिये ताकि पौधे जड़ पकड़लें। अगर विलायती बीज हो तो पौधों के पाँच, छ: इंच ऊँचे होने पर उसी तरह दूसरा चौका फिर बदलते हैं। नहीं तो उन्हें पहिले चौके से उठाकर पहिले से तैयार खेत में हाथ सवा हाथ की दूरी पर पंक्तिबद्ध रोपते हैं। इन पंक्तियों का अन्तर हाथ डेढ़ हाथ रक्खा जाता है। उपरोक्त तरकीब से बोने से फूल सफ़ेद और बड़ा होता है। विलायती गोभी के बीज भादों-क्वाँर में बोये जाते हैं। फूल आने के पहिले प्रत्येक पेड़ की जड़ में थोड़ा २ रेंड़ी की खली का चूरा लगा कर नीचे के दो २ चार २ पत्ते तोड़ दिये जावें तो और बिहतर है। *खली मुहैया न होसके तो सड़ी* का पुराना खाद देने से भी लाभ होता है। गोभी के खेत में चारों ओर किनारे २ और पानी के घोरों के बीच में सोवे के बीज छिटक दिये जावें, तो सोए की गन्ध से कई प्रकार के कीट पतंगों से बड़ा बचाव होता है। और सोए का साग भी मुफ़्त में मिल जाता है। फूल बड़े होने पर दूधिया हालत में ही खेत से अलग कर लेना चाहिये, नहीं तो छिदरा कर कड़े हो जायँगे। बीज लेना हो तो खेत से बड़े और सफ़ेद फूल के

दस-बीस बलिष्ठ पेड़ों को उठा कर बीज की एक दूसरी क्यारी में लगादो। फाल्गुन-चैत्र में सरसों की तरह उनमें फलियाँ आकर बीज पड़ने लगेगा। जब बीज पक कर फलियाँ पीली पड़ने लगें, तब बीज के पौधों को जड़ से उखाड़ कर सूखने पर ठोंक-पीट कर बीज के दाने निकाल लेना चाहिये।

बन्द गोभी।

बन्द गोभी-को केबिज और करमकल्ला भी कहते हैं। इसके पत्ते खाये जाते हैं, ये पत्ते प्याज़ के छिलकों की तरह तले ऊपर होते हैं। भादों से कार्तिक तक इसका बीज बोने से अगहन से लेकर चैत्र तक बन्द गोभी का साग मिल सकता है। पौध रोपते समय तथा बड़ी फ़सल में थोड़ा खली का चूरा लगाकर खेत की मिट्टी से इयठल थोड़ा दाब दिया जावे तो गाँठ बजनी और बड़ी स्वादिष्ट होती है। सर्दी के शुरू में इसे बोने से फ़सल अच्छी होती है। रोपने आदि की बाक़ी सब रीति फूल गोभी के माफ़िक ही है। इसका बीज लेना बड़ा मुश्किल है। ज़रूरत होने पर इसे बीज की कम्पनियों से ही मँगाना चाहिये।

गाछ गोभी।

करमकल्ले की तरह इसके पत्ते ही खाये जाते हैं, पर यह बँधे हुये नहीं होते, बल्कि गोभी के पत्तों के माफ़िक खुले हुए होते हैं। सर्दी के शुरू में बोने से पेड़ लम्बे तथा बलिष्ठ होते हैं। बोने आदि की सब प्रक्रिया वही है, जो ऊपर गोभी की

बताई गई है। पात गोभी भी इसी प्रकार की होती है। ज्येष्ठ में पातगोभी की पौध तैयार की जाती है और करम-कल्ले के माफ़िक पत्ते खाये जाते हैं। ये पत्ते खाने में सलाड के माफ़िक लज्ज़तदार होते हैं।

गाँठ गोभी।

इसमें फूल नहीं लगता बल्कि पत्तों और ज़मीन के बीच में गाँठ पड़ती है और वही खाई भी जाती है। यह गाँठ पाव भर से लेकर सेर-डेढ़ सेर तक की होती है। पर बोने के दो-ढाई महीना बाद नारंगी के माफ़िक होते ही खानी शुरू कर देना चाहिये, क्योंकि अधिक बड़ी होजाने पर खाने में कुछ बेस्वाद होजाती है। सफ़ेद, हरी और बैंगनी तीन तरह की गाँठ गोभी होती है। इनमें सफेद ही सर्वश्रेष्ठ है। बोने का समय श्रावण से क्वाँर तक का है, कोई तो गोभी के माफ़िक एक अलग क्यारी में इसकी पौध तैयार कर फ़ीट डेढ़ फ़ीट की दूरी पर पंक्तिबद्ध कूड़ों में रोपते हैं। कोई कूड़ों में बीज ही छाँट देते हैं। पीछे चार पाँच इञ्च ऊँचे पौधे होजाने पर कमज़ोर पेड़ों को बीच से उखाड़ कर फ़सल को छिदरा कर देते हैं। गुड़ाई-निकाई के अनन्तर एक दो बार खड़ी फ़सल में तरल खाद देने से गाँठ बड़ी और स्वादिष्ट होती है।

चौबीसवीं क्यारी

पान ।

पान एक प्रकार की लता का प्रसिद्ध पत्ता है । इसे ताम्बूली, ताम्बूल और नागर पान भी कहते हैं । यह कत्था, चूना और सुपारी आदि मसालों के साथ बीड़ा बनाकर चबा २ के खाया जाता है । चबाने में भीनी २ एक प्रकार की सुगंध आती है । हर प्रकार के पूजन विवाह-शादी आदि तमाम शुभ कामों में पान का व्यवहार होता है । यहां तक कि घर पर आये गये की खातिर पान बिना अधूरी ही समझी जाती है । यह दवाइयों में भी काम आता है । इसीलिये पान की हमारे देश में मांग बहुत है । पान की जड़ को कुलंजन कहते हैं जो एक प्रकार की दवा है । पान अधिक सर्दी-गर्मी को बरदाश्त नहीं कर सकता, न इसे धूप ही सुहाती है । तनिकसी खुश्की में इसकी लताएँ मुरझाने लगती हैं और थोड़ा भी पानी खेत में भरा रहने से जड़ें सड़ने पर आजाती हैं । मतलब यह कि पान की खेती बड़े परिश्रम और झञ्झट की है । इसलिये हर कोई इसे नहीं कर सकता । हज़ार-पाँचसौ गाँवों के बीच मुश्किल से दस-पाँच गाँवों में पनवाड़ी देखने में आती है । कोई प्रान्त के प्रान्त इसकी खेती से सूने हैं । पंजाब और सीमाप्रान्त में पान बिलकुल नहीं होता पर अपने गुण-स्वभाव के कारण पहुँच

सब जगह जाता है। पान बेचने वालों को तम्बोली कहते हैं पूर्व में तो तम्बोलियों की एक अलग जाति ही होगई है।

पान अधिक पानी चाहता है। इसलिये इसकी खेती प्राय: नदी, तालाब, बन्ध, नहर आदि के किनारे कोई ऊँची ज़मीन देखकर की जाती है, क्योंकि नीची ज़मीन में पानी के भराव के कारण इसकी जड़ें सड़ जाती हैं। पान की खेती के लिये खेत को बाँस-बल्ली और टट्टी-टट्टरों से घेर के ऊपर से खर पात से छाछूकर भोपड़ों का एक बाड़ा सा बनाते हैं। इन बाड़ों को पान का बँगला, भीटा, बरज, बरेब और पनवाड़ी कहते हैं। इनको ऊपर से छाने में इस बात का ख़याल रक्खा जाता है कि घास-फूँस में से छनकर थोड़ासा प्रकाश और बरसात का पानी पौधों तक पहुँच सके। इसलिये पनवाड़ी के मण्डप को आठ-दस हाथ ऊँचा कभी तो बँगले के माफ़िक चारों ओर से ढाल रखते हैं और कभी छप्पर के माफ़िक एक ओर को ही ढाल दे देते। हैं जब भी बरज की ऊँचाई पाँच छ: हाथ रखनी पड़ती है। जहाँ तक बन पड़े पनवाड़ी को बाग़ों के गाछ घर के माफ़िक उत्तम बनाना चाहिये। इसी प्रकार पनवाड़ी की अन्दर की क्यारियाँ बीच में ऊँची रखकर कभी एक तरफ़ को कभी चारों तरफ़ को ढालू बनाई जाती हैं, जिससे कि उनमें पानी का भराव न हो और बरसात का पानी सहज में निकल जाय। यह क्यारियाँ समचौरस न रखकर कूँड़ों के माफ़िक दो-दो ढाई-ढाई फ़ोट के फ़ासले पर हाथ डेढ़ हाथ चौड़ी और तीन चार अंगुल गहरी खेत की लम्बाई में बनाई जाती हैं। पान के लगाने का अच्छा समय बैशाख से भादों तक का है, परन्तु ज्येष्ठ-आषाढ़ में

बरसात का पहिला पानी पड़ते ही पान को रोपना सर्वश्रेष्ठ है। पान का बीज नहीं होता, पान की लता की शाखें और उनके अग्रभाग की टुकड़े करके एक २ बालिश्त के अन्तर से रोपे जाते हैं। जो पौधे अपनी पूरी बाढ़ को पहुँच चुके हैं, और जिनकी शाखायें पक गई हैं, उन्हीं की कलमें रोपने के लिये लीजाती हैं। कहीं २ वृक्षों के नीचे रोपन कर पान की बेलों को कटहल, सुपारी, बेर आदि के पेड़ों पर चढ़ा देते हैं। एक दफ़े ऐसी बेलें पेड़ों पर छाजाने से बहुपरिमाण में दस-बीस वर्ष तक पान देती रहती है। बरज और मोटे का पान भी चार पाँच वर्ष तक फलता है। जब रोपन की लताओं से नये पौधे निकल कर लताएं चलने लगें, तब उनके चार पाँच २ में लकड़ी के भाड़युक्त टेके गाड़ कर देते हैं। या बरज की टट्टियों पर उन्हें चढ़ने देते हैं। जैसे २ बेलें बढ़कर नई पत्ती निकलती जाती हैं, वैसे २ नीचे की पुरानी पत्तियाँ तोड़ कर बाज़ार में बेच दी जाती हैं। जब लता का अग्रभाग बढ़ते २ पनवाड़ी की छत से जा भिड़ता है और उसमें एक भी पान नहीं रहता, तब उसे ऊपर से उतार कर या तो नई कलमों के काम में लाते हैं या लम्बी की लम्बी पनवाड़ी की क्यारी में सुलाकर ऊपर से थोड़ी मिट्टी थोप देते हैं। कुछ अर्से में इससे भी अंकुर फूट कर नई बेलें चलने लगती हैं। पनवाड़ी की ज़मीन को निराई आदि करके हमेशा साफ़ और नरम रखना चाहिये। कभी २ गोड़कर खली आदि का चूरा भी देना उचित है। सिचाई के लिये कुएँ के धोरे से सीधा पानी न देकर भारे या मटके के ज़रिये पेड़ों के ऊपर से छिड़का जावे तो विशेष उपकार होता है और जड़ें सड़कर जल्दी खराब नहीं होतीं। पान की खेती बड़ी लाभदायक है। एक दफ़े

साङ्गोपाङ्ग बैठ जाने से रोज़ दो चार रुपये के पान उतरते हैं और एक दफ़े के लगाये हुये चार-पाँच वर्ष तक रहते हैं। पीछे कुँदरू और परवल के बीज भी पनवाड़ी में स्थान खाली देख बो देते हैं। इससे एक तो पान सजल रहता है दूसरे उनके कुछ फल भी हाथ आ जाते हैं पान की अनेक जातियाँ हैं यथा:—बँगला, मघही, साँची, कपूरी, मदरासी, कलकतिया, अछुवा, महोबी, नवाबी आदि। इनमें साँची, नवाबी और मघही पान खाने में सबसे लज्ज़तदार होते हैं। हमारे इधर राजपूताने में माशलपुर, नैनवाँ और सवाई माधोपुर के आस पास का पान प्रसिद्ध है।

पोदीना।

एक प्रकार का छोटा पौधा है। इसकी पौड़ नहीं चलती बल्कि मैंथी के माफ़िक ज़मीन पर छिदरा जाता है। इसकी पत्तियों में बहुत सुन्दर गन्ध आती है, जो सूखने पर भी नहीं जाती इसीलिये उसे सूखा और हरा हर हालत में मसाले की तरह चखते हैं। चटनी का तो, पोदीना बिना मज़ा ही नहीं। भभके द्वारा पोदीना का अर्क़ और सत भी खींचा जाता है। बराबर खुटता रहने से पोदीना में प्रायः फूल नहीं आते। अगर काटा नहीं जावे तो फूल लगकर बीज आते हैं, पर वह उगते नहीं। इसकी जड़ें और डण्ठल हो रोपे जाते हैं। चैत्र और क्वाँर इसके रोपे जाने का अच्छा समय है। मेंगनी की खादयुक्त पोली और काली मिट्टी पोदीना के अनुकूल होती है।

पीपरमेन्ट।

यह भी पोदीना की तरह का एक खुशबूदार मसाला है। र गन्ध उससे कुछ तीव्र होती है और पेड़ भी मरवा के

माफ़िक सोधा जाता है। इसको हरी और सूखी पत्तियाँ चटनी आदि में काम आती हैं और उनका अर्क़ और तेल भी तयार किया जाता है। यह बालू माट और दुमट मिट्टी में अच्छा होता है। भादों-कांर में पौध तैयार कर कार्तिक से अगहन तक रोपा जाता है।

थाइम।

पोदीना और पीपरमेन्ट की तरह इसकी पत्तियाँ भी बड़ी सुगन्धित होती हैं। यह सूखी औरहरी दोनों हालत में मसाले के तौर पर वर्त्ती जाती हैं और उनका साग भी बनता है। भादों और क्वार में इसके पौध के लिये बीज बोया जाता है। दो-तीन इंच ऊँची होने पर पौध उखाड़कर खेत में रोपते हैं। इसके डण्ठल को मिट्टी में दबा देने से भी नये पेड़ उत्पन्न हो जाते हैं। फ़ुट डेढ़ फ़ुट ऊँचा होने पर जड़ से अंगुल दो अंगुल छोड़कर ऊपर से काटलो। पीछे उसका चाहे साग बनाकर खाओ, चाहे सुखाकर फिर के लिये रख छोड़ो। सेज़ भी इसी प्रकार का एक विलायती मसाला है, जो थाइम की तरह ही बोया और खाया जाता है।

हालिम।

यह एक क़िस्म का छोटा पौधा है। इसके हरे पत्ते सलाड, चटनी और मसाले के तौर पर काम आते हैं। इसे भादों से माघ तक बोते हैं। यह छायादार दुमट मिट्टी में अच्छा उगता है। महीना पन्द्रह दिन के फ़ासले से तले ऊपर बोने से साल भर तक इसके पत्ते मिल सकते हैं। चार-पांच इंच ऊँची हो जाने पर इसकी पौध रोपी जाती है। एक तरह का जल हालिम भी होता है, जो पानी के नज़दीक उगता है।

पोइ ।

इसकी बेल बड़ी सुहावनी होती है और पत्ते तरकारी के तौर पर वर्त्ते जाते हैं। कोई २ इसीको सोमवल्ली कहते हैं। इसके दो भेद हैं-एक बैंगनी पत्तों की होती है और एक सफ़ेद पत्तों की । इसमें माघ-फाल्गुन में फलों की घुंडियाँसी आती हैं, जो पकने पर गहरे बैंगनी रङ्ग को हो जाती हैं और दबाने से उनमें रङ्ग निकलता है। इन्हीं घुंडियों के अन्दर कालीमिर्च के समान एक २ बीज का दाना रहता है। यही दाने बरसात में जहाँ डाले जावें, वहीं उग आते हैं।

पच्चीसवीं क्यारी

बैंगन ।

बैंगन जिसको भटा भी कहते हैं, गोल, लम्बे, छोटे बड़े कई प्रकार के होते हैं, परन्तु मारू और बारहमासी (बथिया) इनके दो मुख्य भेद हैं। बैंगनों की पौध आवश्यकतानुसार साल में दो तीन बार बोई जाती है। पहली बीनी बरसात के प्रारम्भ में की जाती है। बीज को दो-तीन घण्टा जल में भिगोकर बोने से अंकुर जल्द निकलता है।

चार-पाँच पत्ते निकल आने पर पौध को पहिले से तैयार खेत में एक-एक हाथ के अन्तर पर पंक्तिबद्ध रोपते हैं। रोपने के तीन चार घण्टे बाद ही पानी पिलाना चाहिये, ताकि पौधे जड़ पकड़लें। पीछे आवश्यकतानुसार सिंचाई, निराई और गुड़ाई करते रहो। गुड़ाई के समय पौधों को जड़ों में थोड़ी थोड़ी मिट्टी लगादी जावे, तो अच्छा है। इस बुवाई से दिवाली पर बैंगन उतरने लगते हैं और सर्दी के कुछ महीनों को छोड़कर बैशाख-ज्येष्ठ तक उतरते रहते हैं। दूसरी रुपाई माघ-फाल्गुन में होती है। इससे चैत्र-बैशाख में बैंगन आ जाते हैं और आषाढ़-श्रावण तक चलते हैं। तीसरी रुपाई क्वाँर-कार्तिक में होती है। इससे माह-फाल्गुन में बैंगन उतरने लगते हैं, पर सर्दी से पौधों की रक्षा करनी पड़ती है। खेत में अधिक पानी जमा होने या कीड़ा आदि लगने पर बैंगन के पौधों के पत्ते तुलसी के पत्तों की तरह छोटे हो जाते हैं। ऐसी दशा में उन्हें खेत से उखाड़कर फेंक देना चाहिये, नहीं तो दूसरे पौधों को भी खराब कर देते हैं।

टमाटर।

इन्हें विलायती बैंगन भी कहते हैं। ये रूप रङ्ग, डील डौल आदि के भेद से कई प्रकार के होते हैं और हर जगह बहुत आसानी के साथ पैदा हो जाते हैं। टमाटर बोने का अच्छा समय क्वाँर का महीना है। परन्तु अगेती फ़सल लेने के लिये इसे आषाढ़ से कार्तिक तक बो सकते हैं। इसका बीज कहीं तो बौंड़ी हाथ

से छाँट देते हैं और फिर एक दूसरी क्यारी में पौध तैयार क
कुछ बड़ी होने पर रोपते हैं। दो-तीन महीने के अन्दर टम
टर लगने लगते हैं। जब यह पककर लाल हो जाते हैं, त
इन्हें पेड़ों से तोड़कर काम में लाते हैं। हिन्दुस्तानी लोग टमा
टर को अधिक पसन्द नहीं करते। जो खाते भी हैं वह कच्
दशा में ही इसका साग बनाते हैं, जो स्वाद में खट्टा होता है
इसका बीज बैंगन के मानिन्द ही छोटा और चपटा होता है।

भिंडी।

यह एक स्वादिष्ट तरकारी है, जो कच्ची दशा में ही बर्ती जाती है। पकने पर इसका छिलका कड़ा हो जाता है, जिससे तरकारी के योग्य नहीं रहती। भिंडियाँ कई प्रकार की होती हैं-जिनमें के ऊपर कुछ काँटे से होते हैं, कोई बिलकुल साफ़ और चिकनी होती हैं। इसको पौष-माघ से लेकर आषाढ़-श्रावण तक बोते हैं। पर मुख्य फ़सल बरसात में ही होती है। भिंडी के तने से रेशा भी निकाला जाता है, जो रेशम के समान चमकीला होता है पर हमारे देश में रेशे के लिये अभी इसकी काश्त नहीं होती।

चाकला।

यह एक प्रकार की सेम ही है। दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि सेम की बेल चलती है, पर इसका हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा होता है। इसीलिये इसे . सेम कहते हैं। यह प्रत्येक

प्रकार की भूमि में हो जाती है, पर रेतीली और भुड़ दुमट उसकी खेती के लिये अधिक उपयुक्त है। इसे हाथ-डेढ़ हाथ के फ़ासले से पंक्तिबद्ध कूँड़ों या नालियों में बोते हैं, जिनका अन्तर दो फ़ीट के क़रीब रक्खा जाता है। बाकले का बीज बड़ा होता है, इसलिये अगर बीज १२ घन्टे पानी में भिगोकर बोया जाय तो अंकुर जल्द फूटता है। इसके बोने का समय शुरू कार्तिक से अगहन तक का है। जब इसके पौधे बड़े होकर फूलों से लद जायें, तब ऊपर से एक-एक इंच के क़रीब इन्हें खोंट देना चाहिये, नहीं तो कलियाँ कम आवेंगी। माघ-फाल्गुन में सेम के माफ़िक़ लम्बी लम्बी कलियाँ लगने लगती हैं। हर एक कली के अन्दर चार-पाँच मोटे २ बीज रहते हैं। यह बीज ही मटर के दानों की तरह छिलका कर खाये जाते हैं। कच्ची दशा में कलियों की भी तरकारी बनती है, पर यह हरे दानों जैसी स्वादिष्ट नहीं होती। कोई कोई वैशाख ज्येष्ठ में भी इसे बोते हैं, पर इस समय बोने से फलन कम होती है।

हाथी चोक।

विलायती आलू के माफ़िक़ इसकी जड़ होती है और वही खाई जाती है। यह एक पुष्टिकर और सुगन्धित तरकारी है। फाल्गुन से ज्येष्ट तक बोई जाती है। इसपर मिट्टी चढ़ाना आदि बोने की सब क्रिया आलू के समान है। यह अगहन-पौष में तैयार हो जाता है, पर तैयार होने पर भी एक दम खेत से नहीं हटाना चाहिये, क्योंकि ऊपर पड़ा रहने से सिकुड़ कर ख़राब हो जाता है। ज़रूरत माफ़िक़ थोड़ा थोड़ा खेत से निकालते रहो। एक दूसरे प्रकार का हाथीचोक होता है, जिसके फूल और कलियाँ खाई जाती हैं। हमारे देश में इनकी खेती का रिवाज नहीं है, पर अंग्रेज़ लोग हाथीचोक को बहुत पसन्द करते हैं।

से छाँट देते हैं और कहीं एक दूसरी क्यारी में पौध तैयार कर कुछ बड़ी होने पर रोपते हैं। दो-तीन महीने के अन्दर टमाटर लगने लगते हैं। जब यह पककर लाल हो जाते हैं, तब इन्हें पेड़ों से तोड़कर काम में लाते हैं। हिन्दुस्तानी लोग टमाटर को अधिक पसन्द नहीं करते। जो खाते भी हैं वह कच्ची दशा में ही इसका साग बनाते हैं, जो स्वाद में खट्टा होता है। इसका बीज बैंगन के माफ़िक़ ही छोटा और चपटा होता है।

भिंडी।

यह एक स्वादिष्ट तरकारी है, जो कच्ची दशा में ही बर्ती जाती है। पकने पर इसका छिलका कड़ा हो जाता है, जिससे तरकारी के योग्य नहीं रहती। भिंडियाँ कई प्रकार की होती हैं-कितनों के ऊपर कुछ काँटे से होते हैं, कोई बिलकुल साफ़ और चिकनी होती हैं। इसको पौष-माघ से लेकर आषाढ़-श्रावण तक बोते हैं। पर मुख्य फ़सल बरसात में ही होती है। भिंडी के तने से रेशा भी निकाला जाता है, जो रेशम के समान चमकीला होता है पर हमारे देश में रेशे के लिये अभी इसकी काश्त नहीं होती।

बाकला।

यह एक प्रकार की सेम ही है। दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि सेम की बेल चलती है, पर इसका हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा पौधा होता है। इसीलिये इसे बामन सेम कहते हैं। यह प्रत्येक

प्रकार की भूमि में हो जाती है, पर रेतीली और मृदु ज़मीन इसकी खेती के लिये अधिक उपयुक्त है। इसे हाथ-डेढ़ हाथ के फ़ासले से पंक्तिबद्ध कूँड़ों या नालियों में बोते हैं, जिनका अन्तर दो फ़ीट के करीब रक्खा जाता है। बाकले का बीज बड़ा होता है, इसलिये अगर बीज १ घण्टे पानी में भिगोकर बोया जाय तो अंकुर जल्द फूटता है। इसके बोने का समय शुरू कार्तिक से अगहन के मध्य तक है। जब इसके पौधे बड़े होकर फूलों से लद जायँ, तब ऊपर से एक-एक इंच के करीब इन्हें खोंट देना चाहिये, नहीं तो फलियाँ कम आवेंगी। माघ-फाल्गुन में सेम के माफ़िक लम्बी लम्बी फलियाँ लगने लगती हैं। हर एक फली के अन्दर चार-पाँच मोटे २ बीज रहते हैं। यह बीज ही मटर के दानों की तरह छिलका कर खाये जाते हैं। अधकच्ची दशा में फलियों की भी तरकारी बनती है, पर यह हरे दानों जैसी स्वादिष्ट नहीं होती। कोई कोई वैशाख-ज्येष्ठ में भी इसे बोते हैं, पर इस समय बोने से फसल कम होती है।

हाथी चौक।

विलायती आलू के माफ़िक इसकी जड़ होती है और यही खाई जाती है। यह एक पुष्टिकर और सुगन्धित तरकारी है। फाल्गुन से ज्येष्ठ तक बोई जाती है। इसपर मिट्टी चढ़ाना आदि बोने की सब क्रिया आलू के समान है। यह अगहन-पौष में तैयार हो जाता है, पर तैयार होने पर भी एक दम खेत से नहीं हटाना चाहिये, क्योंकि ऊपर पड़ा रहने से सिकुड़ कर ख़राब हो जाता है। ज़रूरत माफ़िक थोड़ा थोड़ा खेत से निकालते रहो। एक दूसरे प्रकार का हाथीचौक होता है, जिसके फूल और कलियाँ खाई जाती हैं। हमारे देश में इनकी खेती का रिवाज नहीं है, पर अंग्रेज़ लोग हाथीचौक को बहुत पसन्द करते हैं।

स्टेयरी।

इसका पौधा बहुत ऊँचा नहीं होता, बल्कि मूँगफली के माफ़िक ज़मीन पर छितरा जाता है। पत्ते गुलाब की पत्तियों के माफ़िक और फल बेर के माफ़िक होते हैं। इसके बीज से पेड़ उत्पन्न करना बड़ा कठिन काम है। इसलिये पुरानी जड़ों और डण्ठलों को दबाकर ही पौध तैयार की जाती है। भादों और क्वाँर में मुज़फ्फ़रनगर, सहारनपुर, पूना आदि से इसकी पौध ही मँगाकर रोपना चाहिये। रोपने के बाद खेत की मिट्टी को दूसरे-तीसरे दिन पानी देकर नम रखना चाहिये और कड़ी धूप के समय चटाइयाँ आदि डालकर धूप से उनको बचाना चाहिये। पीछे समय पर पानी देने, निराने आदि के सिवाय कोई काम नहीं करना पड़ता। माघ में फल-फूल आने शुरू हो जायेंगे। उस वक्त पानी के साथ महीन हड्डी का चूरा, सरसों की खली और पुराने गोबर की खाद देने से फल बहुत परिमाण में और अच्छे आते हैं। फाल्गुन चैत्र में यह फल पककर ज्येष्ठ-आषाढ़ तक बराबर उतरते रहते हैं। बरसात में पोदीना की तरह इसकी पौध मर जाती है। इसलिये बीज के लिये छप्पर आदि डालकर पौध की रक्षा करनी चाहिये।

छब्बीसवीं क्यारी

तुरई।

यह एक प्रसिद्ध तरकारी है इसे तोरी और झिंगनी भी कहते हैं। यह गोल, लम्बी, घिया, नसेली आदि कई प्रकार की

होती है। इनकी दो फ़सलें चैती और बरसाती होती है
चैती फ़सल पौष-माघ में और बरसाती ज्येष्ठ-आषाढ़ में बं
जाती है। चैती फ़सल की बेलों को ज़मीन पर फैलने देते
पर बरसाती बेलों को किसी मकान की छत्त, छप्पर, दीव
बाढ़ आदि पर चढ़ा देना अच्छा है। क्योंकि टेके बग़ैर ब
साती बेलें ज़मीन पर पड़ी २ सड़ जाती हैं। बङ्गाल में ए
गोल तोरीं होती है, जिसको शतपुतिया या झुमका तोरीं क
हैं। इसमें चार-चार पाँच-पाँच तोरूँ के झुम्पे के झुम्पे लट
हैं। कहीं २ लौकी के माफ़िक एक लम्बी तोरीं होती
इसे रामतोरीं कहते हैं। पकी तोरीं में बया की जींज की त
गुथा हुआ रेशा निकलता है, जो नहाने धोने में स्पंज
काम देता है। इस रेशे को पानी में भिगोकर सूँघने से ज़ु
की रतूबत का पानी नाक के द्वारा निकल जाता है।

टिंडा।

इसको टेंड़सी और ढेंढस भी कहते हैं। इसकी
चलती है, पर अधिक फलती नहीं। इसलिये इसको चारों त
गज़ २ भर ज़मीन छोड़कर क्यारियों में बोते हैं। बोने
पहिले यदि बीजों को एक दो दिन दूध-पानी में भिगो ि
जावे तो अंकुर जल्द और पुष्ट निकलता है। तोरीं को
चैती और बरसाती इसकी भी दो फ़सलें होती हैं। बीक
और मारवाड़ की रेती में एक विशेष जाति का बरसाती
अपने आप होता है, जिसको यहाँ वाले मीठा तूँबा कहते

लौकी।

इसे ब्याल और घिया भी कहते हैं। यह लम्बी, गोल, च

तीन पुरिया, चौपलिया आदि कई प्रकार की होती है। तूँवा और दिलपसन्द भी इसीकी जाति में से हैं। मकानों की छत्तों, छप्परों, दीवारों और पास के वृक्षों पर इसकी वेलें चढ़ा देने से फलन अच्छी होती है। इसके बोने आदि की कुल किया तोरों के माफ़िक है। लौकी की तरकारी बीमारों के लिये पथ्य है। गूदे का पेठा और कपूरकन्द भी बनता है। दही और छाछ में डालकर रायता बनाते हैं। तूवे का छिलका बहुत कड़ा और मोटा होता है। इसलिये साधू सन्यासी तूँबे से पानी पीने का पात्र बनाते हैं। सपेरों की मोहरि भी लौकी की तूमड़ी द्वारा बनती है।

कुम्हेड़ा।

इसकी तरकारी नहीं बनती, पर मुरब्बा और पेठा बनाया जाता है। इसलिये इसका नाम ही पेठा पड़ गया है। इसकी काश्त के लिये रेतीली भूड़ मिट्टी अच्छी है, पर बोने के पहिले थोड़ासा पुराना गोवर का खाद मिला लिया जावे, तो अच्छा है। इसे एकान्त स्थान बहुत पसन्द है। अँगुरियाने और छूने से इसके छोटे छोटे फल मर जाते हैं। इसीलिये है कि:—

"... कोउ नाहीं। जो तर्जनी देखि मरिजाहीं॥"

पकने पर इसका एक एक फल दस-पन्द्रह सेर तक का बैठता है।

कुम्हड़ा।

इसे कद्दू, काशीफल और सीताफल भी कहते हैं। इसकी बेलें बहुत फैलती हैं, इसलिये चारों तरफ़ दो-दो तीन-तीन गज़ ज़मीन छोड़कर इसे बोना चाहिये। कोई २ एक पृथक् क्यारी में इसकी पौध तैयार कर चार-पाँच पत्तियाँ आने पर खेत में रोपते हैं। बरसाती और चैती इसकी दो फ़सलें होती हैं। बरसाती बीज ज्येष्ठ-आषाढ़ में बोये जाते हैं और ती पौष-माघ में। बोने के तीन महीना बाद फल उतरने लगते हैं। ये फल चार-पाँच सेर से लेकर मन सवा मन तक के होते हैं। यह कच्चे और पक्के हर हालत में तरकारी के काम आते हैं। छींके आदि पर सम्हाल कर रखने से साल भर तक पके फलों का कुछ नहीं बिगड़ता। बीज की मींगी खाई जाती है और दवा दारू में भी चलती है।

सत्ताईसवीं क्यारी

करेला।

यह फल कड़वा होता है। कहा भी है—"करेला और नीम चढ़ा"। पर साग बड़ा स्वादिष्ट बनता है। चाकू से ऊपर का खुरदरा छिलका उतारकर नमक आदि के साथ धोकर घी या तेल में तलने से इसकी कड़वाहट दूर हो जाती है। पेट चीरकर जैसा यह मसाले का भरवाँ बनता है, वैसा काटकर छिमकने से नहीं होता। इसका अधकच्चा दशा में ही साग बना कर खाया जाता है। पकने पर लाल सुर्ख होकर बीज निकल

लता बड़ी सुन्दर होती है। इसलिये उसे शोभा के लिये बरामदों और कोठियों के थम्भों पर मिहराव बाँधकर चढ़ाते हैं। क्वाँर-कार्तिक में फूल आकर फलियाँ आनी शुरू हो जाती हैं। ये फूल सफ़ेद, बैंगनी आदि रङ्गों के तितलीनुमा होते हैं, जो देखने में बड़े भले मालूम देते हैं। सेम की फलियों का कच्ची दशा में साग बनता है और उनका आचार भी डाला जाता है। बीज पड़ने पर मटर के दानों की तरह बीज को घी आदि में तल कर खाते हैं। बाने आदि की कुल क्रिया तोरों के माफ़िक है। केमाच सेम का बीज सफ़ेद, काला, लाल और चितकबरा कई तरह का होता है। इसकी फलियाँ नहीं खाई जातीं बल्कि बाकले की तरह बीज ही काम में आता है। मक्खन सेम की फलियाँ बहुत चौड़ी और गूदेदार होती हैं। बामन सेम की बेल न चलकर पौधा होता है।

अट्ठाईसवीं क्यारी

ककड़ी।

यह दिलपसन्द तरकारी है। इसे कच्चा भी खाते हैं और साग भी बनाते हैं। सफ़ेद, हरी, गोल, धारीदार और चौपलिया इसके कई भेद हैं, पर उनमें से तर और फूट मुख्य हैं। तर की बुवाई पौष-माघ में होती है और चैत्र में उतरने लगती है। अगर अच्छी गुड़ाई-सिंचाई की जावे, तो ककड़ी की बेलें ग्रीष्म भर फल देती रहती हैं। फूट ककड़ियाँ बरसात में बोई जाती हैं और क्वार-कार्तिक तक रहती हैं। ककड़ी को अधकच्ची दशा में ही बर्तते हैं, क्योंकि यह पकने पर फूट हो जाती है। फूट का स्वाद खरबूजे से मिलता जुलता है। कोई २ ककड़ियाँ कड़वी भी होती हैं। इसलिये जाँच कर मीठी ककड़ियों का ही बीज बोना चाहिये। ककड़ी के बीज ठंडाई में पड़ते हैं, मदरास में उन्हें पीस कर आटे की तरह बर्तते हैं। इनका तेल भी निकाला जाता है।

ककड़ी सभी जगह पैदा हो जाती है, पर नदी और तालाबों के पेटे की मैलायी ज़मीन इसके लिये अधिक उपयुक्त है। इसे चारों तरफ़ गज़ २ भर ज़मीन छोड़ कर गढ़ों में बोते हैं। कहीं हाथ-सवा हाथ के अन्तर पर कूँडों में भी बोते हैं। प्रत्येक कूँड के बीच में बेलों के फैलने के लिये दो-तीन हाथ ज़मीन छोड़ दी जाती है। घनी बोने से पेड़ सीधे पड़कर बेलें कम चलती हैं और फलन भी थोड़ी होती है। ऐसी दशा में जब पेड़ों को ज़ोर पर देखो, तब बेलों के सिरे तोड़ देने चाहियें। अथवा कमज़ोर पेड़ों को उखाड़ कर उन्हें छिदरा कर देना चाहिये।

लता बड़ी सुन्दर होती है। इसलिये उसे शोभा के लिये बरामदों और कोठियों के थम्भों पर मिहराब बाँधकर चढ़ाते हैं। क्वाँर-कार्तिक में फूल आकर फलियाँ आनी शुरू हो जाती हैं। ये फूल सफ़ेद, बैंगनी आदि रङ्गों के तितलीनुमा होते हैं, जो देखने में बड़े भले मालूम देते हैं। सेम की फलियों का कच्ची दशा में साग बनता है और उनका आचार भी डाला जाता है। बीज पड़ने पर मटर के दानों की तरह बीज को घी आदि में तल कर खाते हैं। बोने आदि की कुल क्रिया तोरों के माफ़िक है। केमाच सेम का बीज सफ़ेद, काला, लाल और चितकबरा कई तरह का होता है। इसकी फलियाँ नहीं खाई जातीं बल्कि बाकले की तरह बीज ही काम में आता है। मक्खन सेम की फलियाँ बहुत चौड़ी और गूदेदार होती हैं। बामन सेम की बेल न चलकर पौधा होता है।

चिचिंडा।

यह भी परवल के क़िस्म का एक साग है। इसको अँग्रेज़ लोग बहुत पसन्द करते हैं। यह हरे, सफ़ेद, छोटे, बड़े कई प्रकार के होते हैं और अधकची दशा में साग बनाकर खाये जाते हैं। पकने पर लाल होकर साग के काम के नहीं रहते। यह एक दो फ़ीट से लेकर गज़ २ भर तक लम्बे होते हैं। इसको बरसात में बोते हैं। बोने की कुल क्रिया तुरई के माफ़िक है।

लोबिया।

यह एक प्रकार का रौंसा है। कोई २ इसे सेम का एक भेद मानते हैं। यह कोई हरा, कोई लाल, कोई सफ़ेद, कोई पतला और कोई मोटा कई प्रकार का होता है। फलियाँ भी चार पाँच अंगुल से लेकर दो हाथ तक लम्बी होती हैं। ज्येष्ठ-आषाढ़ से लेकर भादों-क्वाँर तक इसे बोते हैं। बोने और लताओं को चढ़ाने की सब क्रिया तोरों के समान है।

सेम।

इसको बालार भी कहते हैं। यह ऊदी, सफ़ेद, लाल, हरी, चौकोनी, गोल और चपटी कई प्रकार की होती है। ज्येष्ठ-आषाढ़ में पहिला पानी पड़ते ही सेम के बीजों को बोते हैं। उदों की तरह इन बीजों के भी एक सफ़ेद टीकासा रहता है। सेम की बेल बहुत चलती है। इसलिये मचान, टट्टर-टट्टी अवश्य बाँधना चाहिये या टेकें लगाकर बेलों को किसी वृक्ष या झाड़ आदि पर चढ़ा दिया जावे, तो फलन अच्छी होती है। इसके एक साल के बोये हुवे पौधे कई साल तक रहते हैं। सेम की

आते हैं। चैती और बरसाती इसकी भी दो फ़सलें होती हैं। इसको क्वाँर-कार्तिक में बोने से माघ में ही फल जाता है। जङ्गलों में एक छोटी जाति का करेला अपने आप पैदा होता है। इसे वन-करेला कहते हैं। पानी में उबालकर निचोड़ने आदि से यह भी खाने योग्य हो जाता है। ककोड़ा भी इसी की क़िस्म में से है। झोंपड़ों और काँटों की बाढ़ आदि के चारों तरफ़ और जङ्गलों में यह भी अपने आप पैदा होता है। इसमें कड़वाहट न होने से साग अच्छा बनता है।

परवल।

यह बड़ी सुस्वाद और रुचिकर तरकारी है। वैद्य लोग इसका साग पथ्य में देते हैं। अधिक पानी से इसकी जड़ें सड़ जाती हैं, इसलिये ऊँची और हलवाँ ज़मीन में बोते हैं। यह नदी के किनारे की भूड़ और दुमट मिट्टी में अच्छा होता है। धूप और गर्मी इसे सहन नहीं है, इसलिये पनवाड़ियों में लोग इसे बोते हैं। क्वाँर-कार्तिक में छोटे गढ़े वा तीन-चार अंगुल गहरी कूँड़ें बनाकर इसकी जड़ें या मोटी लताओं के टुकड़े रोपे जाते हैं। महीना-डेढ़महीना के अन्दर पेड़ बढ़कर लतायें फैलने लगती हैं। इसकी फ़सल को अधिक पानी की ज़रूरत नहीं होती, पर गुड़ाई, निराई अधिक माँगता है। माघ-फाल्गुन में फल आने शुरू होते हैं। फल लगने पर जल्द २ उन्हें तोड़कर काम में लाओ या बाज़ार में पहुँचा दो, नहीं तो फल लाल पड़कर बीज निकल आवेगा और फलन कमती होगी। ज्येष्ठ-आषाढ़ में परवल का बीज भी बोया जाता है। यह बीज से उगे हुए पेड़ क्वाँर में फल देदेते हैं। इसकी लताओं के चढ़ाने के लिये टेकें अवश्य लगानी चाहियें।

चिचिंडा ।

यह भी परवल के क़िस्म का एक साग है। इसको अँग्रेज़ लोग बहुत पसन्द करते हैं। यह हरे, सफ़ेद, छोटे, बड़े कई प्रकार के होते हैं और अधकच्ची दशा में साग बनाकर खाये जाते हैं। पकने पर लाल होकर साग के काम के नहीं रहते। यह एक दो फ़ीट से लेकर गज़ २ भर तक लम्बे होते हैं। इसको बरसात में बोते हैं। बोने की कुल क्रिया तुरई के माफ़िक़ है।

लोबिया ।

यह एक प्रकार का रौंसा है। कोई २ इसे सेम का एक भेद मानते हैं। यह कोई हरा, कोई लाल, कोई सफ़ेद, कोई पतला और कोई मोटा कई प्रकार का होता है। फलियाँ भी चार पाँच अंगुल से लेकर दो हाथ तक लम्बी होती हैं। ज्येष्ठ-आषाढ़ से लेकर भादों-क्वार तक इसे बोते हैं। बोने और लताओं को चढ़ाने की सब क्रिया तोरों के समान है।

सेम ।

इसको बालार भी कहते हैं। यह ऊदी, सफ़ेद, लाल, हरी, चौकोनी, गोल और चपटी कई प्रकार की होती है। ज्येष्ठ-आषाढ़ में पहिला पानी पड़ते ही सेम के बीजों को बोते हैं। उदों की तरह इन बीजों के भी एक सफ़ेद टीकासा रहता है। सेम की बेल बहुत चलती है। इसलिये मचान, टट्टर-टट्टी अवश्य बाँधना चाहिये या टेवें लगाकर बेलों को किसी वृक्ष या झाड़ आदि पर चढ़ा दिया जावे, तो फलन अच्छी होती है। इसके एक साल के बोये हुये पौंधे कई साल तक रहते हैं। सेम की

लता बड़ी सुन्दर होती है। इसलिये उसे शोभा के लिये बरामदों और कोठियों के थम्भों पर मिहराब बाँधकर चढ़ाते हैं। क्वाँर-कार्तिक में फूल आकर फलियाँ आनी शुरू हो जाती हैं। ये फूल सफ़ेद, बैंगनी आदि रङ्गों के तितलीनुमा होते हैं, जो देखने में बड़े भले मालूम देते हैं। सेम की फलियों का कच्ची दशा में साग बनता है और उनका अचार भी डाला जाता है। बीज पड़ने पर मटर के दानों की तरह बीज को घी आदि में तल कर खाते हैं। थाने आदि की कुल किया तोरों के माफ़िक है। फेमाच सेम का बीज सफ़ेद, काला, लाल और चितकबरा कई तरह का होता है। इसकी फलियाँ नहीं खाई जातीं बल्कि बाकले की तरह बीज ही काम में आता है। मक्खन सेम की फलियाँ बहुत चौड़ी और गूदेदार होती हैं। बामन सेम की बेल न चलकर पौधा होता है।

अट्ठाईसवीं क्यारी

ककड़ी।

यह दिलपसन्द तरकारी है। इसे कच्चा भी खाते हैं और साग भी बनाते हैं। सफ़ेद, हरी, गोल, धारीदार और चौपलिया इसके कई भेद हैं, पर उनमें से तर और फूट मुख्य हैं। तर की बुवाई पौष-माघ में होती है और चैत्र में उतरने लगती है। अगर अच्छी गुड़ाई-सिंचाई की जावे, तो ककड़ी की बेलें ग्रीष्म भर फल देती रहती हैं। फूट ककड़ियाँ बरसात में बोई जाती हैं और क्वाँर-कार्तिक तक रहती हैं। ककड़ी को अध-कच्ची दशा में ही बरतते हैं, क्योंकि यह पकने पर फूट हो जाती है। फूट का स्वाद खरबूजे से मिलता जुलता है। कोई २ कक-ड़ियाँ कड़वी भी होती हैं। इसलिये जाँच कर मीठी ककड़ियों का ही बीज बोना चाहिये। ककड़ी के बीज ठंढाई में पड़ते हैं, मदरास में उन्हें पीस कर आटे की तरह बरतते हैं। इनका तेल भी निकाला जाता है।

ककड़ी सभी जगह पैदा हो जाती है, पर नदी और तालाबों के पेटे की सैलाबी ज़मीन इसके लिये अधिक उपयुक्त है। इसे चारों तरफ गज़ २ भर ज़मीन छोड़ कर गड्ढों में बोते हैं। कहीं हाथ-सवा हाथ के अन्तर पर कूँडों में भी बोते हैं। प्रत्येक कूँड के बीच में बेलों के फैलने के लिये दो-तीन हाथ ज़मीन छोड़ दी जाती है। घनी बोने से पेड़ सीधे बढ़कर बेलें कम चलती हैं और फलन भी थोड़ी होती है। ऐसी दशा में जब पेड़ों को ज़ोर पर देखो, तब बेलों के सिरे तोड़ देने चाहियें। अथवा कमज़ोर पेड़ों को उखाड़ कर उन्हें छिदरा कर देना चाहिये।

खीरा ।

यह ककड़ी क ही एक भेद है। प इसका मुह कड़व होता है। इसीलिये लोग ऊपर की तरफ़ से खीरे को काटकर नमक-मिर्च लगाकर खाते हैं। प्रत्येक फाँक में बीज होते हैं, जो पकने पर कड़े हो जाते हैं। अतः इसको अधकची दशा में ही खाना चाहिये। इसका साग और रायता भी बनता है। चैती और बरसाती खीरे की दो फ़सलें होती हैं। पर सब से अच्छे खीरे बरसात में ही होते हैं। उदयपुर और मालवे का बालम खीरा बहुत प्रसिद्ध है। बीने आदि की कुल किया ककड़ी के माफ़िक है।

खरबूज़ा ।

यह एक लता विशेष का फल है, जो पाव भर से लेकर चार-पाँच सेर तक का होता है। खरबूज़े के ऊपर एक जालीदार छिलका होता है, जिसमें धारीनुमा कई फाँकें रहती हैं। अधकची दशा में जिसे [illegible] ते हैं, इसका साग भी बन- है। पर अधिकतर पका ही खाया जाता है। यह पकने पर

अन्दर से लाल होजाता है और एक प्रकार की सोनी २ गन्ध आने लगती है। लखनऊ का सरदा अन्दर से सफेद निकलता है। गंगापारी का गूदा प्राय हरा रहता है। यह हरे दाने का खरबूजा बड़ा मीठा होता है। हमारे इधर राजपूताने में साँवना जिला अजमेर और बनास नदी का खरबूजा प्रसिद्ध है। अफ़ग़ानिस्तान का सरदा महीनों रक्खा रहने पर भी नहीं बिगड़ता। खरबूज़ा सब तरह की ज़मीन में हो जाता है। पर नदी, तालाबों के किनारे और उनके पेटे में अच्छा उपजता है। इसे पौष से फाल्गुन तक बोते हैं। चन्द्र-बैशाख में पका हुआ खरबूज़ा बाज़ार में आने लगता है। बोने आदि की कुल क्रिया ककड़ी के समान है। यदि हाथ को सुहाते थोड़े गरम पानी में बीज को एक-दो दिन भिगो रख कर अंकुर फूटने पर बोया जाय, तो पेड़ जल्द निकल आते हैं।

तरबूज़।

यह भी एक लता विशेष का फल है। इसे कलींदा और मतीरा भी कहते हैं। मारवाड़ और बीकानेर का मतीरा प्रसिद्ध है, क्योंकि यह रेती ही का फल है। इसीलिये तरबूज़ गंगा, जमुना आदि नदियों के किनारे के खेतों और उनके पेटे में अच्छा पैदा होता है। इस की

चैती और कातिकी दो फ़सलें होती हैं। चैती प्राय: पौष-माघ में बोया जाता है और ग्रीष्म भर बाज़ार में मिलता है। कातिकी को शुरू आषाढ़ में बरसात होने पर बोते हैं। यह घास आदि की झूँगरियों में दबा रखने से माघ-फाल्गुन तक बना रहता है। तरबूज़ सेर दो सेर से लगा कर मन सवामन तक का होता है। यह मीठे गूदे और शरबत से भरे रहते हैं। गूदा लाल, पीला और सफ़ेद होता है, पर सफ़ेद रंग के फलोंदे प्राय: मीठे नहीं होते। इनमें लाल गूदे का तरबूज़ ही सर्वश्रेष्ठ है। बीज भी लाल, सफ़ेद, पीले, काले कई रंग के होते हैं। इन बीजों की मींगी को शक्कर के साथ पाग कर खाते हैं। घी आदि में तलकर नमक मिर्च मसाला लगाकर चबेना भी बनाते हैं। ऊपर के कड़े गूदे की तरकारी और रायता बनता है या उसे पशु चर लेते हैं।

उन्तीसवीं क्यारी

मूली।

एक प्रसिद्ध तरकारी है। इसकी फलियाँ, जड़, पत्ते और डण्ठल सब खाये जाते हैं। स्वाद कुछ चरपरा होता है। कच्ची खाने में बड़ी लज़्ज़तदार होती है। इसका साग भी बनाया जाता है। चिकनी मिट्टी को छोड़कर और सब प्रकार की ज़मीन में मूली अच्छी होती है, पर रेतीली और भूड़ मिट्टी इसकी खेती के लिये सर्वोत्तम है। खली, अस्थिचूर्ण और पुराने गोबर

का गाद देने से और भी अच्छी और मीठी मूलियाँ उत्पन्न होती हैं। भादों और क्वांर इसके बोने का अच्छा समय है। इसे कहीं छिटकवाँ कहीं पंक्तिबद्ध कूँड़ों में बोते हैं और चार पाँच पत्ते निकलते ही घनी मूलियों को उखाड़कर खाना शुरू कर देते हैं। इससे फ़सल छिदरी होकर शेष मूलियों को बढ़ने-फैलने के लिये अच्छा स्थान मिलता है। कोई कोई गेहूँ, पेमड़, गोभी आदि की क्यारियों की मेंड़ों पर मूली का हाथ से छिदरा छिदरा बीज गाड़कर चोपली लगा देते हैं। इस तरह बोने से मूलियाँ खूब मोटी और सुडौल होती हैं। गंगा जमुना की रेती और मारवाड़ के मरुस्थल में सेर दो सेर से लेकर पाँच पाँच सेर तक की मोटी मूलियाँ पैदा होती हैं। मूली की पेंदी को काटकर रोपने से फलियाँ लम्बी और मोटी आती हैं। विलायती मूलियाँ गोल, लम्बी, अंडाकृत, लाल, पीली, ऊदी, काली आदि कई प्रकार की होती हैं।

गाजर।

मूली के माफ़िक यह एक मीठा कन्द है। इसकी कई जातियाँ हैं, पर पीली और काली गाजर बहुत मीठी होती है। गाजरों को कच्चा खाते हैं और भूनकर तथा उबालकर भी खाई जाती हैं। इनका हलवा बड़ा पुष्ट होता है। साग और अचार भी अच्छा बनता है। जानवरों को तो गाजर बढ़िया खुराक है। यह दुमट, रेतीली भूड़ ज़मीन में अच्छी पैदा होती है। भादों-क्वांर बोने का अच्छा समय है, पर गाजर का बीज श्रावण-

भादों के झड़ में अच्छा उगता है। इसे कहीं छिटकवां और कहीं नालियों में बोते हैं। बोने के दो तीन महीने के अन्दर गाजर बाज़ार में आ जाती हैं और फाल्गुन-चैत्र तक चलती हैं। डण्ठलों और पत्तों को गाय, भैंस आदि पशु चर लेते हैं। बीज के लिये नीचे से काटकर गाजर का पेंदी रोपी जाती है, जिसमें छत्ते की तरह डोंडी निकलकर बीज आते हैं।

चुकन्दर।

यह यूरोप का मूल पदार्थ है, जो समुद्र के खारे पानी से अच्छा होता है। वहाँ इसको बीट कहते हैं। इस बीट से जर्मनी आदि देशों में लाखों मन शक्कर प्रतिवर्ष तैयार होती है। इसके पत्ते और बीज पालक के समान होते हैं। नीचे गाँठगोभी की तरह गाँठ बैठती है। यह गाँठ लम्बी और गोल कई प्रकार की होती है। इसका रंग इंगुर के माफ़िक लाल होता है, इसलिये हिन्दुस्तानी इसको कम पसन्द करते हैं, पर अंग्रेज़ों को बहुत पसन्द है। वह लोग इसे कई तरह से वर्त्तते हैं। भादों-क्वाँर इसके बोने का समय है। नालियों में फ़ीट-दो फ़ीट के अन्तर से इसे बोते हैं। इसका बीज और अंकुर पक्षियों को बहुत पसन्द है, इसलिये बोने के चार-छः दिन तक सुबह शाम रखवाली करना आवश्यक है। गाँठ पड़ने पर शोरा या नमक का चूर्ण पानी के साथ देने से चुकन्दर खूब मोटा और मुलायम होता है। चुकन्दर की गाँठें ज्यों ज्यों बढ़ती जावें त्यों त्यों उन्हें मिट्टी से दाबते रहना चाहिये, नहीं तो हवा और धूप लगकर कड़ी हो जाती हैं।

शकरकंद।

खाने के कंदों में इससे मीठा और मुलायम दूसरा कंद

नहीं है। इसका साग बनता है और उबाल कर व आग में भून कर भी खाते हैं। यह लाल और सफ़ेद दो प्रकार का होता है। इसका बीज नहीं होता, बल्कि जड़ और लताओं के टुकड़े ही रोपे जाते हैं। रोपने का अच्छा समय ज्येष्ठ और आषाढ़ है, पर सिंचाई आदि का सुपास होने से भादों और क्वार में भी बोया जाता है। बोते समय इस बात पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये, कि लता के हरएक टुकड़े में एक-दो गाँठ अवश्य हों। और इन गाँठों में जो तन्तु होते हैं, वह ऊपर को निकले रहें। इसको हाथ २ भर के फ़ासले से कूँड़ों और नालियों में पंक्तिबद्ध रोपते हैं। और बेलें फैलने के लिये इन कूँड़ों का अन्तर गज़ सवागज़ रक्खा जाता है।

तीसरी क्यारी

शलगम।

शलगम मूली के माफ़िक एक पुष्ट तरकारी है। यह गोल, चिपटे, लाल, सफ़ेद और ऊदे कई प्रकार के होते हैं। हिन्दू लोग इसे कम खाते हैं। बोने का समय भादों से कार्तिक तक का है। इसे खेत में तीन चार अंगुल ऊँची कूँड़ें बनाकर पंक्तिबद्ध बोते हैं या दूसरी फ़सलों की क्यारियों की मेंड़ों पर इसको चोपली लगाते हैं। यह दो-ढाई महीने में तैयार होकर बाज़ार में आने लगता है। और शनैः २ उखाड़ने से जाड़े भर चलता है।

पियाज़ ।

यह भी एक पुष्ट तरकारी है, जिसे काँदा भी कहते हैं। इसका मसाले और ओषधी के तौर पर भी व्यवहार होता है। इसमें एक तरह की तीव्र गंध होती है, इसीसे कुछ ब्राह्मणादि इसे नहीं खाते। गोभी के माफ़िक कुछ क्यारियों में घना बोकर पहिले इसकी पौध तैयार की जाती है। जब पौधे कुछ ऊँचे होजाते हैं, तब उन्हें क्यारियों से उखाड़ कर खेत में पास २ रोपते हैं। कार्तिक-अगहन में जब काँदे खाने योग्य होजाते हैं तब उन्हें ज़रूरत माफ़िक खेत से उखाड़ कर छिदरा करते रहते हैं। चैत्र-वैशाख में काँदे पक कर पत्ते पीले पड़ने लगते हैं, तब उन्हें जड़ से खोदकर निकाल लेते हैं। निकालने के बाद या तो उन्हें दो चार दिन धूप में सुखाकर कोठों में फैला दो या बाज़ार में लेजाकर टके सीधे करलो। कभी २ ऐसा होता है कि बीच में ही पत्तियाँ पीली पड़कर पेड़ मुरझाने लगते हैं। जब ऐसा देखो तब पौधों पर सूखी राख छिड़क कर तुरंत पानी दे दो। ऐसा एक दो बार करने से पेड़ हरे होकर फिर लहलहाने लगेंगे। रेतीली भूमि के कारण मारवाड़ का पियाज़ बहुत बड़ा और अच्छा होता है। जैसलमेर का लुद्रवा इसके लिये बहुत विख्यात है।

लिक।

पियाज़ की क़िस्म का ही यह एक कन्द विशेष है, जो उसी तरह बर्ता या खाया जाता है। इसकी जड़ पियाज़ से भी बड़ी और लम्बी होती है। इसे अंग्रेज़ लोग अधिक पसंद करते हैं और यही लोग इसे यूरोप से यहाँ लाये हैं। भादों-क्वाँर में टप या पेटी में गोभी के माफ़िक़ पौध तैयार करके खेत में एक २ हाथ की दूरी पर तीन-चार अंगुल ऊँची कूँड़ें बना कर इसे रोपते हैं। पीछे ज़रूरत माफ़िक़ सिंचाई करके आस पास की मिट्टी जड़ से लगाते रहो और समय २ पर गुड़ाई, निराई करके हर समय खेत की मिट्टी को पोली और नम रक्खो। इस प्रकार तीन-चार महीने में खाने लायक गाँठें तैयार होजायेंगी, जिनको यत्न पूर्वक काम में लाने से वर्षा तक चलती हैं।

लहसन।

इसका व्यवहार भी पियाज़ के माफ़िक़ होता है और उसी विधि से खेती की जाती है, परन्तु इसका बीज नहीं होता बल्कि छोटी २ पुथी ही बोयी जाती हैं। लहसन के सिरे पर जब पुथियाँ आने लगें तब उन्हें तोड़ देना चाहिये, नहीं तो मूल की पुथियाँ पुष्ट नहीं होतीं। जिन पौधों का बीज रखना होता है, उनके ऊपर की पुथियाँ नहीं तोड़ी जातीं और यही पड़कर बीज का काम देती हैं। उच्च वर्ण के हिन्दू लोग इसके खाने से परहेज़ करते हैं।

इकत्तीसवीं क्यारी

आलू ।

आलू का पौधा वास्तव में अमेरिका का है। यह अमेरिका से सन् १५८० ई० में यूरोप पहुचा। अंग्रेज़ इसे हिन्दुस्तान में लाये। सन् १६१५ ई० में सर टामसरो को अजमेर में नवाब आसफ़जाँ की तरफ़ से जो भोज दिया गया था, उसमें आलू का ज़िक्र आया है। जब पहिले पहिल आलू हिन्दुस्तान में आया तब बहुतसे हिन्दू इसे नहीं खाते थे। बाद को आलू का ऐसा प्रचार हुआ कि व्रत के दिन भी लोग इसे खाने लगे। अब तो लाखों मन आलू प्रतिवर्ष हमारे यहाँ पैदा होता है।

आलू की अनेक जातियाँ हैं, उनमें पहाड़ी और देशी मुख्य हैं। इन्हीं दोनों किस्मों की खेती प्रायः सारे भारतवर्ष में होती है। आलू का पौधा डेढ़ दो फ़ी ऊँचा होता है। जड़ों में ज़मीन के नीचे आलू लगते हैं और वही खाने के काम में आते हैं। पत्तों और डण्ठल में एक प्रकार का विषैला खार होता है, इसलिये पशु भी उन्हें रुचि के साथ नहीं चरते। गी पर लाल और बैंगनी रङ्ग के घेटेनुमां फूल आकर

गोल २ फल लगते हैं, जिनमें टमाटर के दाने जैसा बीज रहता है, पर यह बीज बोने के काम में नहीं आता।

बोने के लिये साबत आलू और उसके टुकड़े ही काम आते हैं, कारण यह कि बीज से उत्पन्न आलू पहिली साल बहुत छोटे होते हैं। इसलिये फलों का न लगना ही अच्छा है। अतः जब पौधों में फूल निकलना आरम्भ हो तब ऊपर से उनके सिरों को नोच डालना चाहिये, नहीं तो आलू छोटे होंगे। पर हरएक टुकड़े में एक दो आंख (गड्ढे) अवश्य होनी चाहिये। आलू सब प्रकार की ज़मीन में होजाता है, परन्तु रेती मिली हुई दुमट, भूड़ और पीली मिट्टी इसकी काश्त के लिये अधिक उपयुक्त है। साधारण खाद पांस के सिवाय खड़ी फ़सल में रेंडी की खली का चूरा, शोरा और खड्डी का खाद देने से आलू की पैदावार चौगुनी-पचगुनी अधिक होती है। इसके बोने का अच्छा समय आधे भादों से लेकर आधे अगहन तक का है, पर क्वार में बो देना सबसे श्रेष्ठ गिना जाता है। पहाड़ों पर माघ से चैत्र तक बाउनी होती है। खाद पांसयुक्त पहिले से तैयार ज़मीन में दो-दो फ़ीट के फ़ासले पर ४ इंच गहरी कूड़ें बनाकर फ़ीट-सवाफ़ीट के अन्तर पर कुल्ला निकले हुए पुराने आलुओं को या उनके टुकड़ों को दाबकर यौंही छोड़ देते हैं। कहीं कूँड के दोनों ओर की मिट्टी पलटकर खेत को बराबर कर देते हैं। जहाँ अधिक पानी बरसता है वहाँ आलू को गहरी कूँड़ों में न बोकर दो-तीन अंगुल ऊँची पालियों में बोते हैं। बोने के पहिले चूना और तूतिया मिले हुए पानी में आलुओं को थोड़ी देर डुबोकर सुखा लिया जाय तो बेहतर है। एक मटकी पानी के लिये १ सेर बिना बुझा हुआ चूना और ढाई तोला तूतिया काफ़ी होता है। इस प्रकार बोने से न तो

आलू सड़ेगा और न कीड़ा लगेगा यदि काटकर बोया जाय तो फटी हुई जगह में थोड़ासा ताज़ा गोबर मल देना अच्छा होता है। चाहे पौधा निकले चाहे न निकले, दस-बारह दिन बाद पहिला पानी देना चाहिये। अमूमन इस बीच में अंकुर बढ़कर पौधा निकल आता है। फ़ुट डेढ़फ़ुट ऊँचा होने पर आलू के पौधों को हाथ से हिलाकर कूँड के दोनों तरफ़ से थोड़ी थोड़ी मिट्टी लेकर पीड़को दाब देना चाहिये, सिर्फ़ थोड़ासा अग्रभाग खुला रहे, इस क्रिया को मिट्टी चढ़ाना कहते हैं। इस मिट्टी चढ़ाने के साथ थोड़ासा खली का चूर्ण भी दबी हुई पेड़ी के साथ लगा दिया जाय तो और अच्छा है। मिट्टी चढ़ाने के दो-तीन दिन बाद पानी देना चाहिये। महीना-बीस दिन के अन्तर से ऐसा ही दो-तीन बार करो। पौष में आलू मोटा होकर खाने योग्य हो जाता है। फाल्गुन-चैत्र में जब पौधों के पत्ते पीले पड़ कर सूखने लगें तब तमाम फ़सल को कुदाल से खोदकर खेत से उठा लो। अच्छा खाद-पानी मिलने से एक बीघे में सौ सवासौ मन आलू पैदा हो जाता है। नैनीताल, दार्जिलिङ्ग, फ़र्रुख़ाबाद, सूरत, पूना और महाबलेश्वर आलू की पैदावार के मुख्य क्षेत्र हैं।

अरवी।

यह एक मूल प्रधान तरकारी है। संयुक्तप्रदेश में इसे घुइयाँ कहते हैं। फाल्गुन से चैत्र तक नालियों में इसे बोते हैं। यह नालियाँ तीन-चार अंगुल गहरी खाद पांसयुक्त ज़मीन में दो दो फ़ीट के फ़ासले पर बनाई जाती हैं। पीछे इन्हीं नालियों में एक एक फ़ीट के अन्तर पर अंकुरित अरवियाँ गाड़ देते हैं। बुवाई हो चुकने के बाद खेत को पानी से भर देते हैं। पीछे

सिंचाई करते हैं। दस-पन्द्रह दिन में पत्ते

निकलकर पेड़ बढ़ने लगते हैं। अरवी की पौड़ नहीं चलती, बल्कि जड़ ही से पत्ते निकलकर डण्ठल बढ़ा करते हैं। ये पत्ते कमल के पत्तों की तरह बड़े होते हैं। इन पत्तों और डण्ठलों का भी साग बनता है। हरएक पेड़ के नीचे जिसमें से अरवियाँ फूटती हैं, एक गट्ठा होता है। इन गट्ठों को कचालू कहते हैं। कचालू की चाट और अचार प्रसिद्ध है। अरवी के खेत में बरसाती पानी भरा हुआ न रहना चाहिये, नहीं तो अरवियाँ सड़ जावेंगी और सींजने में मुश्किल से गलेंगी। आलू की तरह इनकी पैदावार भी बहुत होती है। एक एक बीघे में पचास-साठ मन अरवियाँ निकलती हैं। यों तो आषाढ़-श्रावण में ही अरवी बाज़ार में आजाती है, पर कार्तिक की खुदी हुई अरवी बड़ी और पुष्ट होती है। एक जाति की अरवी कचालू के माफ़िक मोटी होती हैं, उन्हें बंगाली घुइयाँ कहते हैं।
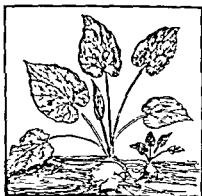
रतालू।

यह भी एक मूल प्रधान तरकारी है। इसका पेड़ नहीं होता, बल्कि बेल चलती है। इन बेलों को टेकों पर चढ़ा देते हैं। अगर टेकों पर नहीं चढ़ाया जाय और सिरे का अग्रभाग हाथ से नोचते रहें तो भी काम चल जाता है और गाँठ मोटी पड़ती

है। ज्येष्ठ-आषाढ़ इसके बोने का समय है, पर कोई माघ-फाल्गुन में ही रोप देते हैं। लता के टुकड़े गाड़ देने से ही नई पौध पैदा हो जाती है। परन्तु इस दशा में रतालू की गाँठ देर से पड़ती है। अतः रतालू के टुकड़े करके ही बोना अच्छा है। यह खूब खाद-पाँसयुक्त नालियों और गढ़ों में बोया जाता है। जितनी पोली ज़मीन होगी उतनी ही गाँठ लम्बी और मोटी पड़ेगी। कार्तिक से रतालू बाज़ार में आने लगता है और जाड़े भर चलता है। यह बड़ी स्वादिष्ट तरकारी है। गरम मसाला आदि देकर चतुराई के साथ बनाया जावे, तो बराबर का घी पी जाता है। हाथों में घी या तेल लगाकर इसे छीलते हैं, नहीं तो हाथ में खुजली चलने लगती है।

ज़मीकन्द ।

इसे शूरन भी कहते हैं। यह कन्द पदार्थों में सब से स्वादिष्ट तरकारी है। यह छोटे बड़े हाथी के पाँव जैसे कई प्रकार के होते हैं। पर सबसे अच्छा वही शूरन समझा जाता है, जो खाने में ज़बान न पकड़े। यह पकाने में थोड़ा भी कच्चा रह जावे, तो खाने में जीभ को पकड़ता है और काँटे से लगकर मुँह झल्ला जाता है। इसलिये इमली के पत्तों के साथ इसके टुकड़ों को कर गरम मसाला, दही आदि इसका साग बनाते हैं। यह भी

११ जो बरसेगी स्वाँती, रँहटा चले न ताँती ।
१२ जो भादों में बरसा होय, काल पछो कर जाकर रोय ।
१३ जो सावन में बरसा होवे, खोज काल का बिल्कुल खोवे ।
१४ तपे जेठ, तो बरसा हो भरपेट ।
१५ चले नखत मृगाशीरा जोय, तब बरखा पूरन जग होय ।
१६ देखो अवसर को भलो, जातें पूरे आस ।
खेती सूखे बरसिश्रो, घन को कौने काज ।।
१७ जब आये बरसन का चाव, पछवा गिनै न पुरवा बाव ।
१८ जमींदार को किसान, बचे को मसान ।
१९ ज़मीन सख्त और आसमान दूर ।
२० जहाँ जायँ मूसर, वहीं खेत ऊसर ।
२१ जुत जुत मरे बैलवा, बैठे खायँ तुरंग ।
२२ जेठ तपत हो बरखा गहरी, हँसे बाँगरू रोवे नहरी ।
२३ खेत बिगाड़े खरतुआ, सभा बिगाड़े दूत ।
२४ खेत भला नहिं झील का, घर भला नहिं सील का ।
२५ शुक्रवार की बादली, रहे शनीचर छाय ।
कहे घाघ सुन घाघनी, बिन बरसे नहिं जाय ।।
२६ गेहूँ अच्छा नहर का, चाँवल अच्छा डहर का
२७ गोंडा खेती सीखा साँप, मा भयकारन बादी बाप ।
२८ घर का खेत न खेती बारी, कहैं मियाँ मेरी नम्बरदारी ।
२९ पका पान खाँसी न जुखाम ।

३० निपट सवेरा खेत में, जाकर हल को बाह ।
जब सूरज हो सीखमा, बैठ छाँह में जाय ।

३१ खेती खसम सेती ।

३२ बरसे आषाढ़ तो हो जा ठाड़ ।

३३ बरसो राम धड़ाके से, बुढ़िया मर गई फाके से ।

३४ बसवा शहर का, खेत नहर का ।

३५ बाड़ लगाई खेत को, बाड़ खेत को खाय ।
राजा ही चोरी करे, न्यावे कौन चुकाय ।।

३६ चाहे पूत पिता के धर्मों, खेती उपजे अपने कर्मों ।

३७ बिजली चमके, मेहा बरसे ।

३८ साँडों के सँग खेती की, गाय मजा कर अपनी की ।

३९ भादों का भल्ला, एक सींग सूखा एक सींग गिल्ला ।

४० भादों के मेह से दोनों शाख की जड़ बँधती है ।

४१ एक बैल की खेती, खाव तरक नहिं सेती ।

४२ भूमिया तो भूमी मरी, तूँ क्यों मरी बटेर ।

४३ भूरा भैंसा गाँजी जोय, पूप महावट बिरले होय ।

४४ भूला फिरे किसान जो, कातिक माँगे मेंह ।

४५ हाली बच्छा ढाँगला, बलध बच्छा चाँगला ।

४६ भैंस कहे गुण मेरा पूरा, मेरा दूध पी होवे सूरा ।
जिसके घर में मैं बँध आऊँ, दूध, दही की नदी बहाऊँ ।

४७ गाय दूध जो बछवाँ पीवे, बुज्बत घटे न जब लग जीवे ।

४८ धन खेती धृक चाकरी, धन धन है व्यापार।
भीख माँगनो लाख धृक, पंडित करो विचार॥

४६ खेती-पाती, वीनती, घोराँ तणी खुजाल।
जो सुख चाहे जीव का, हाथों हाथ सम्हाल।

५० सब जमीन में वोही रानी, जिसके सिर पर मीठा पानी।

५१ हरी खेती गाभिन गाय, मुँह पड़े तब जानी जाय।

५२ हल चलाओ भाई हल, जितना जोतो उतना फल।

५३ खाद पड़े तो खेत, नहीं तो कूड़ा रेत।

५४ कातिक तेरह तीन असाढ़, जो चूका तो बया न भाड़।

५५ रोहिनी मृगशिर बोओ मक्का, उड़द औ मड़वा देय न टका।

५६ साढ़ी शाख और पीपल की राख।

५७ सावन मास बहे पुरवैया, खेले पूत बला ले भैया।

५८ सावन मास बजे पुरवैया, बेचो बरधा लेलो गैया।

५६ सावन पछवा भादो पुरवा, आश्विन बहे इसान।
कातिक कंत न डोले सिकयो, कत के रखवा धान।

६० दक्षिण दिशा की बाजे बाय, तो पनिहारी पाछे आव।

६१ पूरव केरा वायरा, आथण तो जो होय।
समया कहिये कर वरा, ऊन्हल सरसी जोय।

६२ पच्छिम वाजे वायरा, आषाढ़े हो मेह।
भादरवा कोरा कढ़े, अन्न प्रयम संमेह॥

६३ उत्तर पवन जु बाजिया, इन्द्र पधारे आप।
घर घर मंगलचार पर, रोग घणेरी ताप॥

६४ दक्षिण दिशा बाजे बुरो, समय विकारो जाण ।
सांड अन्न मँहगा करे, नरों में लावे माण ॥

६५ आगातीजाँ पूरब बाजे, तो असलेखा गहरी गाजे ।

६६ नाहीं टाकन बलद बिकावन, मत बाजे तू आधे सावन ।

६७ सावण में सूरयो भलो, भादरवे पुरवाई ।
आसोजा में पश्चिम बाजे, ज्यूँ ज्यूँ साख सवाई ॥

६८ सावन पहिली पंचमी, इन्द्र धड़ाके आय ।
गहना गाँठा बेचि पिय, बैल खरीदो जाय ॥

६९ सावन शुक्ला सप्तमी, छिपके ऊगे भान ।
कहैं घाघ सुन घाघनी, बरखा देख उठान ॥

७० मृगशिर तप नव रोहिणी, आद्रा बरसे आय ।
कहे डाक सुन भिल्लरी, कुत्ता भात न खाय ॥

७१ आदि न बरसे आर्दरा, हस्त न गिरे निदान ।
कहे डाक सुन भिल्लरी, भये किसान पिसान ॥

७२ चढ़ते बरसे आर्दरा, उतरत बरसे हस्त ।
कितेक राजा दंड ले, आनँद रहे गृहस्त ॥

७३ जेठ मास रोहिण तपे, काल कभी नहिं थाय ।
रोहिण में छींटा पड़ें, मेहा खींच कराय ॥

७४ चारों पाये रोहिणी, तपे ज्येष्ठ के माँहि ।
चार मास में जानिये, अति घन पावस आहि ॥

८६ थल थल थके पपैया थाणी, कूँपल थाँम तणी कुमलानी ।
जलहल तेज उगो रवि जाणी, तो पहरो में ओसर पाणी ॥

८७ नाडी जल हो तातो नाली, थरक रहे नीलो रंग थाली ।
पहके बैठि सिरे चुंहाली, घटा चढ़े तो निहचे काली ॥

८८ जेठ मास जो जाय तपन्तो, तो कुण राखे जल बरसन्तो ।

८९ तीतर पंखी बादली, विधवा काजर रेख ।
वो बरसे आ घर करे, या में मीन न मेख ॥

९० तीतर पंखी बादली, आभा नीला कच्छ ।
भीम कहे सुन भड्डली, छापर कूदे मच्छ ॥

९१ सावन पहिली पंचमी, घनहिं चमके बीज ।
हो सुकाल कह भड्डली, हिलमिल खेलो तीज ॥

९२ ऊगन्तेरो माछलो, आथम तेरो भोग ।
डंक कहे सुन भड्डली, नदियाँ चढ़सी भोग ॥

९३ चैत चिड़पड़ो, सावन निरमलो ।

९४ परभाताँ गह डम्बराँ, दो पहरां तापंत ।
रातूं तारा निरमला, चेला करो गछंत ॥

९५ परभाताँ गहडम्बराँ, साँजे सीला बाव ।
डंक कहे सुन भड्डली, कालां तणा सुभाव ॥

९६ सावण तो सूतो भलो, ऊभो भलो आषाढ़ ।
दुतिया चंद निहारिवो, सबै मिटावे राड़ ॥

९७ आखातीजाँ साँझ को, जो चंदा अरु भान ।
बायों चंदा वित हरे, दहिने लाभ निदान ॥

९८ चंद छोड़े हिरनी, तो लोक छोड़े परणी ।

९९ जेठ बीती पहिली पड़िवा, जो अम्बर गहरावे ।
अषाढ़ सावन काढ़े कोरो, भादरवा बरसावे ॥

१०० आभो रातो मेहमातो, आभो पीलो मेह सीलो

१०१ सारी गाली रोहिणी, सारा गाल्या मूल ।
पूर्वाषाढ़ धड़ूकिया, निपजे सात् तूर ॥

१०२ दीपमालिका दिया बुझावे, होली झाल उतर दिस
अषाढ़ पूनम नैरित बाव, अन्न बिके सुन आने ।

१०३ आषाढ़ारी सुदि नमी, घण बादल घण बीज ।
नाला कोठा खोल दो, राखो हलने बीज ॥

१०४ सावन कृष्णा पंचमी, बीज गाज नहीं वेह ।
तो हल जोते लाभ का, आयो समया छेह ॥

१०५ सावन पहिली पंचमी, जो बाजे बहु बाय ।
काल पड़े सब देश में, मानुष मानुष खाय ॥

१०६ हथिया बरसे चित्रा मँडराय, घर बैठा किसान रिरि

१०७ हथिया बरसे तीन होत हैं, शक्कर, शाली, माँस ।
हथिया बरसे तीन जात हैं, कोदों, तिली कपास ।